॥ ओ३म् ॥

लाल आंधी

कम्यूनिज्म की विचारधारा

का

मार्ग दर्शक गंभीर विवेचन

प्रकाशक

जन-ज्ञान-प्रकाशन

नई देहली ५

प्रकाशक :

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

जून १९७०

संवत २०२७

मूल्य ६० पैसे :

मुद्रक :

कैसलोन प्रेस

करोल बाग नई दिल्ली-५

प्रकाशक की ओर से—

रक्षा का मार्ग

आज यह निर्णय करने का समय आ गया है कि कम्यूनिज़्म विष है या अमृत ? कुछ का मत है कि यह ऐसा अमृत है जिसके द्वारा मनुष्य की समस्त समस्यायें सुलझ सकती हैं, सारे कष्ट नष्ट हो सकते हैं। किन्तु अनुभव बता रहे हैं कि इस अमृत का पान करने वालों को स्वर्ग नहीं रौरव नर्क मिला। वह कष्ट मिले कि देखने वाले कांप उठे।

फिर भी कम्यूनिज़्म का नशा सर्व-साधारण को बहकाने में सफल हो रहा है। यह लाल आँधी सम्पूर्ण परम्पराओं और शान्ति व्यवस्था को भस्मसात करती बढ़ती चली आ रही है। सारी धरती को लाल बना देना इसका लक्ष्य है भले ही यह लाली करोड़ों मनुष्यों के रक्त की ही क्यों न हो।

धर्म, ईमान, न्याय, सदाचार इनकी दृष्टि में व्यर्थ है। समानता का नारा इन्हें वह सब कुछ करने की अनुमति देता है जिसे देख पशुता भी लज्जा अनुभव करती है।

वैदिक वर्ण व्यवस्था जहां मनुष्य को जन्म से समान मान कर्म के आधार पर वर्णों में विभाजित करती हैं वहां कम्यूनिज्म किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करता किन्तु मार्ग-दर्शक (ब्राह्मण) सैनिक (क्षत्रिय) व्यापारी (वैश्य) और शूद्र (श्रमिक) वर्ग के बिना क्या कभी कहीं किसी का कार्य चल सकता है ?

वस्तुतः भोग और त्याग में जो अन्तर है, शरीर और आत्मा में जो भिन्नता है वही भिन्नता कम्यूनिज़्म और वैदिकवाद में है। सत्य असत्य का संग्राम आज कम्यूनिज़्म और वैदिक विचारधारा के रूप में उपस्थित है। वर्ग विहीन समाज की कल्पना के नाम पर जो रक्तपात, हिंसा और पैशाचिकता का तांडव नृत्य हो रहा है उसे रोकने के लिए धर्म, सत्य, न्याय, मानवता के सभी प्रहरियों को पूर्ण शक्ति से संघर्ष कर बढ़ती लाल आँधी के जहर को 'धर्म-अमृत' के रूप में बदलना होगा।

मानवता की रक्षा का और कोई मार्ग नहीं है :—

—भारतेन्द्र नाथ

कम्युनिज़्म : एक पाशविक प्रवृत्ति

—० वैद्य गुरुदत्त ०—

कम्युनिज़्म के जन्मदाता कार्ल मार्क्स, उसके सहयोगी फ्रैड्रिक ऐंजिल तथा इन मूढ़मति कुतर्क करने वालों की बातों को कार्यन्वित करने वाले लेनिन ने संसार में मूर्खों और अयोग्यों का एक संगठन तैयार किया है। इसका नाम कम्युनिज़्म रख दिया है। यह संगठन इतना प्रबल हो गया है कि इसकी अंगुलियों पर संसार नाचता प्रतीत होता है।

विचारणीय बात यह है कि वह कौन सी मूर्खता है जो इन महापंडितों ने की है और उस मूर्खता के समर्थन में कैसा संगठन तैयार किया गया है। इस संगठन में बल क्या है और फिर क्यों संसार इनकी अंगुलियों पर नाचने लगा है ?

सर्वप्रथम कम्युनिज़्म में मूर्खता का ही वर्णन कर देना चाहते हैं। कार्ल मार्क्स ने कम्युनिज़्म के घोषणा-पत्र में लिखा है कि संसार के मनुष्य दो वर्गों में विभक्त हैं। एक सम्पत्तिधारी और दूसरे सम्पत्ति-विहीन। इनको वह बुर्जुआ और प्रोलिटेरियेट कहते हैं। बुर्जुआ हैं सम्पत्ति धारी, जो सम्पत्ति से दूसरों के परिश्रम को मोल लेते हैं और प्रोलिटेरियेट हैं जो अपने पास एक पैसा भी नहीं रखते और वे अपना परिश्रम बेच कर ही जीवन-निर्वाह करते हैं।

मूर्खता यह है कि संसार में ये दो वर्ग नहीं हैं। कारण यह कि सम्पत्ति वह संचय करता है जो अधिक एवं बुद्धियुक्त परिश्रम करता है और अपनी आय से कम व्यय करता है। सम्पत्ति उसके पास एकत्रित नहीं होती जो अपनी कामनाओं को इतना बढ़ा लेता है कि उसकी आय उनकी पूर्ति नहीं कर सकती।

अतः वर्ग सम्पत्तिधारी और सम्पत्ति-विहीनों के नहीं, वरंच बुद्धिशील तथा मितव्ययी श्रमिकों का और प्रमादी, कामचोर, आलसी तथा बुद्धि-विहीन, फजूल खर्च श्रमिकों के हैं।

इन्हीं दो वर्गों को श्रीमद्भगवद्गीता में दैवी प्रवृत्ति वाले और आसुरी प्रवृत्ति वाले कहा गया है।

दूसरी मूर्खता जो इन महापण्डितों ने चलायी है और जिसे विचारशून्य कम्युनिस्ट मानते है कि संसार में एक वर्ग बनाने का प्रयत्न करना है। कम्युनिस्ट यह चाहते हैं कि केवल सम्पत्ति-विहीन वर्ग ही रहे।

यह नहीं होगा। सम्पत्ति-विहीनों में से ही पुनः सम्पत्तिधारी उत्पन्न हो जायेंगे। सम्पत्ति रखना मनुष्य के स्वभाव में है।

यों तो श्रीमद्भगवद्गीता वाले वर्ग भी सदा से हैं और सदा रहेंगे। देवता और असुर आदि सृष्टि से रहे हैं और अन्त काल तक रहेंगे।

आर्थिक दृष्टि से भी संसार में दो वर्ग सदा से हैं। इनमें से कोई भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

रूस में पचास वर्ष से अधिक काल से कम्युनिज़म सत्ताधीश हैं, परन्तु सम्पत्ति रखने की प्रवृत्तियाँ वहाँ आज भी उपस्थित हैं। जो कोई भी जिस पद पर पहुंच जाता है, वह उस पद से चिपटा रहता है। उससे ऊंचा पद पाने का यत्न तो करता है, परन्तु पदच्युत होना नहीं चाहता।

बलपूर्वक एक ही वर्ग नहीं बनाया जा सकता। अर्थात् बलपूर्वक कोई भी वर्ग निःशेष नहीं किया जा सकता। प्रेरणा से भी वर्गरहित समाज का निर्माण नहीं हो सकता। इसमें कारण यह है कि सम्पत्ति का एकत्रित करना मनुष्य के स्वभाव में है। कोई कितनी सम्पत्ति एकत्रित कर सकता है, यह एक पृथक् बात है। परन्तु सम्पत्ति सब रखना चाहते हैं।

जहाँ परिश्रम करने वाले लोग होंगे, वहां धन का अर्जन होगा। जहाँ मितव्ययिता होगी वहाँ सम्पत्ति का निर्माण होगा। जहाँ बुद्धिमान् लोग होंगे, वहाँ वह सम्पत्ति पूंजी का रूप ले लेगी। यह मनुष्य के स्वभाव में है।

कम्युनिस्ट देशों में इस स्वभाव को बलपूर्वक बदलने का यत्न किया जा रहा है। ऐसा करने के लिये एक प्रबल सेना, प्रबल खुफिया पुलिस और विचार पर प्रतिबन्ध तथा पढ़ने-लिखने पर नियन्त्रण लगाया जा रहा है। कम्युनिस्ट देशों में न तो कोई विचार बाहर से आने दिया जाता है और न ही भीतर विचार-प्रसार की स्वीकृति दी जाती है।

इस बलपूर्वक प्रतिबन्ध और नियन्त्रण को लागू करने के लिये पूर्ण देश को एक विशाल जेलखाना अथवा पशुशाला बना दिया गया है। यही बात कम्युनिस्ट सब स्थानों पर करने की इच्छा रखते हैं।

प्रश्न है कि मूर्खता रखते हुए भी कम्युनिस्ट किस प्रकार अपना संगठन

वना सके हैं ? इसमें कारण यह है कि संगठन बनाने में एक ऐसा विधि-विधान होता है जिसका सम्बन्ध न तो धर्म-कर्म से और न ही सत्य-झूठ से है। संगठन एक भौतिक प्रक्रिया है जिसमें प्रायः छल, कपट तथा मनोद्गारों से काम लिया जाता है, परन्तु इससे पहले जन-मानस को मृत-प्रायः बनाया जाना आवश्यक है। मनुष्य में चेतन वस्तु आत्मा है। आत्मा कार्य करती है बुद्धि के आश्रय। इस कारण मनुष्य को चेतना रहित, अभिप्राय यह कि जड़ बनाने के लिए उस की बुद्धि कुण्ठित करने की आवश्यकता होती है। कम्युनिस्टों के भी गुरु यूरोप के नास्तिक मीमांसकों ने वहां के पढ़े-लिखे लोगों की बुद्धि को कुण्ठित करने का यत्न किया था। परिणाम मूर्खता पूर्ण संगठन बन गया है।

यूरोप में ईसाई मत ने श्रद्धा पर इतना बल दिया कि विचारशीलता को अनावश्यक माना जाने लगा। बुद्धिरहित श्रद्धा स्थिर वस्तु नहीं है। अंधविश्वास एवं श्रद्धा से ही मूर्ख गुरुओं के अनुयायी बन सके हैं। ईसाई धर्म ने कुछ ऐसा वातावरण यूरोप में उत्पन्न कर दिया था और इसका परिणाम ही यह हुआ कि कार्ल मार्क्स के अनुयायी अपना संगठन बनाने में सफल हुए हैं। बुद्धिविहीन जनता में कुछ समाघोष प्रचारित किए गये और उन समाघोषों के प्रभाव में कम्युनिज़्म का संगठन तैयार किया गया है।

समाघोषों में सबसे मिथ्या घोष यह है कि समाज में अर्थ के आधार पर वर्ग है। क्योंकि संसार में अयोग्य, प्रमादी और शिथिल बुद्धि वालों की संख्या अधिक है और ऐसे व्यक्ति प्रायः निर्धन होते हैं। इस कारण यह वर्ग-सिद्धान्त संगठन का आधार बन गया है। नारा है—'सम्पत्ति-विहीनो, एक हो जाओ और संसार पर राज्य करो।'

इस नारे की मूर्खता इस बात से ही स्पष्ट हो जाती है कि राजा सब तो बन नहीं सकेंगे। इस कारण नारा लगाने वाले स्वयं सम्पत्तियुक्त होने के लिये यह नारा लगाते हैं। यह बात चीन और रूस दो प्रमुख कम्युनिस्ट देशों में देखी जा रही है। सम्पत्तिविहीनों को एकत्रित होने का समाघोष कर लेनिन, स्टालिन, माओत्सी तुंग और अंगुलियों पर गिने जाने वाले इनके साथी सत्तासम्पन्न हो ऐश उड़ाते हैं और अपनी सत्ता को स्थिर रखने के लिये लाखों को मौत के घाट उतार देने के लिये आयोजन करते रहते हैं।

इन देशों में लोग इन समाघोषों के जाल को तोड़ने का यत्न करते रहते हैं

ग्रौर पर्ज (Purge) का नाम लेकर उनको सहस्रों ग्रौर लाखों की संख्या में समाप्त करने का ग्रायोजन किया जाता है। जब ग्रधिकारी हत्या करते करते थक जाते हैं तो फिर श्रम शिविरों (Concentration Camps)में कैद कर भूखों मारने का प्रबन्ध कर देते हैं।

ऐसा करने के लिये कम्युनिस्ट सम्पत्तिधारी, ग्रभिप्राय यह कि कम्युनिस्ट सत्ताधिकारी ग्रपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ ग्रौर ग्रपने ग्राधीन बनाये रखते हैं। यही कारण है कि रूस ग्रौर चीन में देश की पूर्ण जनता के परिश्रम से उपलब्ध ग्रधिकांश धन सेना ग्रौर शस्त्रास्त्रों पर व्यय किया जा रहा है। सेना के घटकों को खाने-पीने ग्रौर सुख भोग की सब प्रकार की सुविधा देकर ग्रपने ग्रनुकूल रखा जाता है ग्रौर फिर उनके द्वारा पूर्ण देश को एक पशुग्रों का बाड़ा बनाकर ग्रपने पद का उपयोग किया जाता है।

यह है संगठन का रहस्य। ग्रयोग्य ग्रौर गुणहीनों की संख्या ग्रधिक है। उनको झूठी ग्राशायें देकर संगठित कर उनको ग्रपनी ही बेड़ियां निर्माण करने पर लगा दिया जाता है।

हमारा यह विचारित मत है कि इस प्रकार का संगठन न तो उनके हित में है जो इसका निर्माण करने में लगे हैं ग्रौर न ही उनके हित में है जो इस संगठन का शरीर हैं। संगठन-निर्माता हैं झूठे समाघोषों को करने वाले! ग्रौर संगठन का शरीर है जनता का वह ग्रंग जो ग्रयोग्य ग्रौर गुणहीन होते हुए गुणवानों के बराबर फल की इच्छा करते हैं।

ये लोग उनके लिये भी मुसीबत उत्पन्न कर रहे हैं जो स्वतन्त्र जीवन में ग्रपनी योग्यता से मुकाबला करते हुए उन्नति करना चाहते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता से जीविकोपार्जन करने वालों की ग्रौर विचार तथा विचार करने के प्रसार की स्वतन्त्रता चाहने वालों की संख्या संसार में कम नहीं है, परन्तु वे ग्रसंगठित होने के कारण ग्रपनी इच्छित स्वतन्त्रता का भोग नहीं कर सकते। इनको संगठित करने के लिये बुद्धिशील लोग न तो मिथ्या ग्रस्वाभाविक ग्रौर ग्रव्यावहारिक समाघोष करते हैं ग्रौर न ही वे बल तथा छल से संगठन में विश्वास रखते हैं। ग्रतः उनके पास केवल प्ररणा ही एक साधन है जिससे संगठन संभव हो सकता है।

प्रेरणा ग्रौर समाघोषों में ग्रन्तर होता है। प्रेरणा मन ग्रौर बुद्धि का विषय है। इसे ज्ञान ग्रौर विचार की बात भी कहा जा सकता है। समाघोष

सदा बुद्धि रहित मनोद्गारों को उभारने वाले होते हैं। इसी कारण प्रेरणा कल्याण की सूचक है और समाघोष मूढ़ता का प्रतीक।

समाघोषों में बुद्धि को उलाँघ कर कार्यक्षेत्र में पहुंचाया जाता है और प्रेरणा से बुद्धियुक्त कार्य की प्रक्रिया निर्माण की जाती है। समाघोष दासता अथवा पशुता निर्माण करने वाले हैं और प्रेरणा स्वतन्त्रता की नींव पर स्वर्ग निर्माण करती है।

परन्तु प्रेरणा के लिये विद्वान् ब्राह्मणों की आवश्यकता होती है और भारत में विद्वान् निर्माण करने की मशीन बिगड़ी हुई है। हमारा अभिप्राय है कि शिक्षा दूषित हो गई है। मूर्ख ईसाईयों से विचारित शिक्षा-पद्धति और विधि भारत में मैकाले के काल से चली आ रही है। परिणाम यह है कि भारत में भी यूरोप-अमेरिका की भान्ति कम्युनिज़्म पनप रहा है।

कम्युनिज़्म एक पशु-निर्माण की योजना है। इसको रोकने का उपाय है शिक्षा पद्धति को आर्य शिक्षा में परिणत किया जाये।

मैं समझता हूं कि कम्युनिस्टों के वास्तविक रहस्य का उद्घाटन करने के लिए श्रेष्ठ चरित्रवान् ब्राह्मणों की आवश्यकता है और उसके लिये शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

ऐसा होने से ही श्रेष्ठ जन अर्थात् देवताओं का संगठन बन सकेगा और असुरों को पराजित किया जा सकेगा।

स्वतन्त्रता स्वर्गीय वस्तु है किन्तु यह कम्युनिज़्म में दिखायी नहीं देती।

नई दिल्ली **—गुरुदत्त वैद्य**

लाल आँधी

—स्व० श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थी—

संसार में इस समय दो प्रकार के मत हैं, एक वह हैं जिन्हें आस्तिक कहते हैं दूसरे वह जिन्हें नास्तिक। नास्तिकों का मन्तव्य है कि मनुष्य में ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति तो है किन्तु स्वभावतः उसे ज्ञान प्राप्त नहीं, उदाहरण के रूप में संसार में प्रत्येक प्राणी स्वभावतः तैरना चाहता है किन्तु मनुष्य का बच्चा तैरना सीख तो सकता है किन्तु स्वभावतः वह इससे वंचित है, परिणाम यह कि सब मनुष्य सृष्टि के प्रारम्भ काल से अनुभव प्राप्त करते, उनसे विविध परिणाम प्राप्त करते तथा क्रमशः वृद्धि करते आ रहे हैं, किसी ने कोई कार्य उन्हें सिखाया नहीं; किन्तु उनका यह विचार एक भ्रममात्र है, क्योंकि हम देखते हैं कि आज भी संसार में ऐसी जातियां विद्यमान हैं जो छः से ज्यादा गणना नहीं जानतीं, यह भी तो पौने दो अरब वर्ष (जब से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है) से अनुभव प्राप्त करते तथा उनसे प्राप्त किये परिणामों द्वारा शिक्षा प्राप्त करते आये हैं, फिर क्या कारण है कि वह सभ्यता की दौड़ में पीछे रह गए और अन्य कई जातियां उन्नति के शिखर पर पहुँच गईं। यदि आप जरा विचारपूर्वक देखेंगे तो पता लग जाएगा कि जो जातियां सभ्यता की दौड़ में पीछे रह गई हैं उनका किसी सभ्य तथा उन्नत जाति के साथ सम्पर्क नहीं हुआ, जो उन्हें कुछ सिखा सकतीं। नहीं तो वह भी उन्हीं के सदृश उन्नति कर जातीं। आस्तिक धर्मों की यही शिक्षा है कि ज्ञान बिना सिखाए नहीं आ सकता जैसा कि अकबर और फ्रैडरिक महान् ने वास्तविक अनुभव द्वारा मालूम किया था कि वह स्व-समीपस्थ मनुष्यों के सदृश (जो उनकी सेवा-शुश्रूषार्थ रखे गये थे) गूंगे ही रह गए थे। आस्तिक कहते हैं, कि जब ईश्वर ने हमारी बाह्य प्राकृतिक आँखों के पथ-प्रदर्शनार्थ सूर्य बनाया है तो यह कैसे सम्भव था कि वह हमारी आन्तरिक तथा आध्यात्मिक चक्षुओं के पथ-प्रदर्शनार्थ कोई वस्तु न बनाता, अतः पश्चिमी विद्वान् मिस्टर मैक्समूलर ने भी अपनी एक

पुस्तक में लिखा है कि जो परमात्मा बच्चे की उत्पत्ति से पूर्व उनकी पालना के लिए माता के स्तनों में दूध उत्पन्न कर देता है तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह मनुष्य मात्र की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कोई साधन प्रस्तुत न करता। इसी लिए आस्तिक मन किसी न किसी ईश्वरीय ज्ञान के विश्वासी हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह अपने साथियों के साथ परस्पर मिल कर रहना चाहता है, और सदैव इसी के लिए प्रयत्नशील रहता है कि उसके जीवन के दिन सुख तथा विश्राम के साथ बीतें, इसलिए आस्तिकों का कथन है कि परमात्मा ने आदि सृष्टि में अथवा उनके पश्चात् मनुष्यों को अपना आवश्यक ज्ञान देकर उनका पथ-प्रदर्शन किया तथा उन्हें स्वकर्त्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान दिया, और सिखाया कि संसार में कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिए, किन्तु नास्तिक सम्प्रदाय ऐसी ईश्वरीय शिक्षा तथा पथ-प्रदर्शन के विरोधी हैं, और अपनी विद्या तथा बुद्धि-अनुसार प्रयत्नशील रहते हैं कि क्षणभंगुर तथा असार जीवन में अधिक से अधिक सुख प्राप्त किया जाय; अतः इसी उद्देश्य से साम्यवाद समाजवाद जैसे वाद घड़े गये। रूस में १९१७ के विप्लव के पश्चात् इसी विषय का कार्य रूप में अनुभव किया जा रहा है, आस्तिक धर्मों का मन्तव्य तथा उनसे स्वीकृत मत कहां तक उचित हैं इस विषय पर पश्चात् विचार करेंगे ! इस स्थल में तो हम केवल सर्वप्रथम साम्यवाद-कम्युनिज्म तथा समाजवाद-सोशलिज्म पर विचार करना चाहते हैं क्योंकि इन वादों ने हमारी शिक्षित जनता में अत्यन्त खलबली मचा रखी है, और भारत वर्ष के कई प्रान्तों में तो इनके कारण रक्तपात तथा झगड़े-फसाद हो चुके हैं तथा होते रहते हैं। जो भारतीय स्वभावतः अहिंसा और सत्य के पुजारी हैं तथा जिन्हें बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी पर्यन्त यही शिक्षा मिली है वह अशुद्ध विचाराधीन होकर अपने तथा अपनी जाति के माथे पर कलंक का टीका लगा रहे हैं, उनकी यह अकस्मात् कायापलट न केवल आश्चर्यजनक ही है अपितु अत्यन्त कष्टप्रद भी है।

वे चाहते क्या हैं ?

अब विचारणीय यह है कि साम्यवादी तथा समाजवादी चाहते क्या हैं ? इस समय संसार में चार क्रम पाये जाते हैं आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक। आश्चर्य यह है कि साम्यवाद इन चारों का घोर विरोधी है।

(१) आर्थिकवाद

रूस के प्रसिद्ध नेता (जो कम्युनिज्म के जन्मदाता माने जाते हैं) कार्ल-मार्क्स ने सन् १८४७ में एक लघु पुस्तिका लिखी थी जिस का शीर्षक था Communist manifasto । इसमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि प्रचलित पूंजीवाद ही सब खराबियों तथा विपत्तियों का मूल कारण है। जब तक उस का स्थान साम्यवाद को न मिलेगा तब तक संसार में सुख तथा शान्ति असम्भव है। हम देखते हैं कि संसार में अल्प संख्यक मनुष्यों के अतिरिक्त अधिक संख्या ऐसे मनुष्यों की पाई जाती है कि जिनका जीवन दुःख तथा अशान्ति से ही व्यतीत होता है। जन साधारण की आय तथा आर्थिक स्थिति में इतना अधिक अन्तर देख कर आश्चर्य होता है, क्योंकि एक मनुष्य केवल दस रुपये मासिक पाता है हालांकि उसके घर के दस व्यक्ति हैं, जिनका निर्वाह उसी पर है, और एक अन्य व्यक्ति को पांच हज़ार रुपये मासिक प्राप्त हैं, जिसके घर के व्यक्तियों की संख्या दो या तीन से अधिक नहीं। साम्यवादी कहते हैं कि जब जीने का अधिकार सब को एक जैसा है तो फिर जीने के साधनों में इतना अन्तर क्यों? अतः उनका पहला मौलिक सिद्धान्त यह है कि सब को उनकी आवश्यकतानुसार धन मिलना चाहिये, न कि कार्य के आधार पर। उनका कहना है कि यह असह्य है कि एक मनुष्य को तो भोग-विलास की सब सामग्री प्राप्त हो, दोनों समय भोजन के अतिरिक्त विस्की तथा वीयर का उपभोग करे तथा दूसरा रोटी तथा पानी से भी वंचित रहे। उनके विचार में उसका केवलमात्र उपाय यह है कि सम्पत्ति की बाँट सब में एक जैसी हो तथा हर व्यक्ति से उसकी योग्यता तथा सामर्थ्यानुसार कार्य लिया जाये।

(२) इस सम्बन्ध में साम्यवाद का दूसरा मौलिक सिद्धान्त यह है कि किसी को निजी सम्पत्ति रखने तथा अपने पीछे उत्तराधिकारी देने का अधिकार न होना चाहिये, वे कहते हैं कि एक व्यक्ति तो अपने पीछे एक लाख रुपये छोड़ जाता है और उस का उत्तराधिकारी जो इस सम्पत्ति से लाभ उठाता है वह अत्यन्त अयोग्य तथा भोगविलासरत पुरुष है। वह इतना धन अनायास प्राप्त करके संसार में खराबी पैदा करने का कारण बनता है, अतः किसी व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने तथा उत्तराधिकारी के लिये छोड़ने का अधिकार न होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि साम्यवाद प्रत्येक

प्रकार से पूंजीवाद का बहुत बड़ा शत्रु है। वर्त्तमान स्थिति में उसे होना भी चाहिये क्योंकि जब निर्धन लोग देखते हैं कि सख्त परिश्रम के पश्चात् भी उन्हें पेट भर भोजन प्राप्त नहीं होता, किन्तु दूसरी ओर पूंजीपति केवल अपने धन-सम्पत्ति के बल बूते पर आनन्द लेते तथा मौज उड़ाते हैं तो उन का खून खौलने लगता है, क्योंकि रुपया पैसा तो सम्पत्ति की प्राप्ति में केवल एक साधन है, सबसे बड़ा साधन तो मनुष्य की मेहनत तथा परिश्रम है, फिर परिश्रम करने वाले तो भूखों मरें तथा केवल रुपया पैसा वाले मौज उड़ायें यह सर्वथा अन्याय है अतः असह्य है। इसके अतिरिक्त पूंजीपति वह वस्तुएं भी अधिक मात्रा में पैदा नहीं करते, जिन की समाज को आवश्यकता है, वह तो केवल वही वस्तुएं उत्पन्न करना चाहते हैं जिन से उन को आर्थिक लाभ हो, उन्हें सर्व साधारण के सुख की अपेक्षा अपने आप की अधिक चिन्ता रहती है इसी का नाम पूंजीपति वाद है और संसार से जितनी तीव्रता से इसका नाश किया जा सके उतना ही अच्छा है।

(२) राजनीतिक क्रम

दूसरा राजनीतिक क्रम है। साम्यवादी कहते हैं कि आजकल राज्य पूंजीपतियों के हाथ में है। विद्या तथा योग्यता का इतना मान नहीं जितना कि धन सम्पत्ति का। एक धनवान् व्यक्ति बड़े योग्य व्यक्ति को अपना नौकर रख कर उस की योग्यता से पूरा २ लाभ उठा सकता है किन्तु योग्य से योग्य आदमी धन के अभाव के कारण बेपर पक्षी के समान बेकार होता है। जन साधारण में अच्छे से अच्छे आदमी का न वह मान होता है और न ही उस के हाथ में शक्ति होती है, जितनी कि केवल धन-सम्पन्न मनुष्य को प्राप्त है। आज अमेरिका में क्योंकि पूंजीपति अधिक हैं और प्रैस पर उनका अधिकार है अतः जब भी वह चाहें राज्य-प्रबन्ध को बदल सकते हैं क्योंकि जन साधारण की सम्पत्ति की चाबी उन के हाथ में होती है अतः राज्याधिकारियों को सदैव उनसे दबे रहना पड़ता है यही कारण है कि पुलिस, सेना तथा विद्या जैसे लाभदायक विभागों पर उन का अधिकार रहता है और वह मनमाने विधान बना कर मुल्क पर शासन जमाये रहते हैं। साम्यवादियों के निकट यह सब बातें सर्वथा असह्य हैं, इसलिये वे सदैव इस प्रयत्न में रहते हैं कि राज्य की बागडोर मज़दूर के हस्तान्तर्गत हो जाय तथा धनपतियों को इस से वंचित कर दिया जाय,

इसके साथ ही साम्यवादी प्रजातन्त्र के भी सख्त विरोधी हैं, हालांकि रूस में वर्त्तमान राज्य प्रबन्ध का विधान भी प्रजातांत्रिक (Democratic) है। किन्तु वहाँ कितनी स्वतन्त्रता है, यह समाचार पत्रों के पाठक भली-भाँति जानते हैं। वास्तव में साम्यवादी तथा समाजवादी मज़दूरों के राज्य व डिक्टेटरशिप के पक्षपोषक हैं और संसार भर में यह परिवर्तन के इच्छुक तथा प्रयत्नशील हैं।

(३) सामाजिक क्रम

तीसरा क्रम है सामाजिक क्रम। साम्यवादी इस का भी विरोधी है। उस की सम्मति में सारी खराबी का मूल कारण ऊंच-नीच का भाव है। जो समाज ऊँच-नीच की भावना पर स्थित हो जैसा कि वर्तमान काल में हमारा समाज है उसमें सच्ची शान्ति तथा सुख कदापि नहीं आ सकता, इस लिये वह संसार में ऐसा समाज बनाने के इच्छुक हैं जो एकता के भाव पर स्थित हो जिस में ऊंच-नीच का कोई चिह्न न हो। सब लोग एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक बर्तें और कोई किसी को ऊंच-नीच न समझे, ऊपरी दृष्टि से यह नियम भी अच्छा ही प्रतीत होता है किन्तु यदि थोड़ा गहराई में जाकर विचार किया जाय तो इस में संसार के दु:खों में ह्रास के स्थान पर वृद्धि ही होगी।

(४) धार्मिक क्रम

चौथा विरोध साम्यवादियों की ओर से धार्मिक क्रम का होता है। वे मजहब तथा उसके मन्तव्यों को एक प्रकार की आहिफेन (अफीम) बताते हैं, जो पूंजीपतियों ने अपनी धन सम्पत्ति को सुरक्षित रखने तथा मज़दूर दल को अपने आधीन रखने के लिए घड़ रखे हैं। चूंकि आजकल मज़हब अधिकतर अन्धपरम्परा पर स्थिर है इस लिये साम्यवादी सिरे से धर्म के ही विरोधी बन बैठे हैं और कहते हैं कि यह पण्डित मुल्ला तथा पादरी जो सर्वसाधारण को मज़हब के नाम पर लूट रहे हैं यही खराबी का मूल हैं। यह लूट खसूट बन्द होनी चाहिए अन्यथा संसार में सुख-शाँति न होगी। इसी कारण वे सब मन्दिरों, मसजिदों तथा गिरजाघरों के विरोधी हैं, अतः यही कारण है कि रूस में पादरियों को अपना मत या वोट देने का भी अधिकार नहीं है, मज़हब के विरुद्ध साम्यवादियों का सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि इस का आधार उधार पर और समाजवाद का निर्माण नक़द पर। मजहब तो यह सिखाता है कि यदि इस संसार में नेकी करोगे, दान दोगे, दरिद्रता का

जीवन व्यतीत करोगे तथा इस गन्दी दुनिया से दिल न लगाओगे तो तुम्हारा परलोक सुधरेगा और तुम स्वर्ग या बहिश्त में सदैव के लिए सुख का जीवन व्यतीत करते रहोगे अन्यथा दुःख उठाते रहोगे, प्रयोजन यह कि मजहब पर चलने का फल केवल उधार के रूप में पेश किया जाता है कि आने वाली दुनिया में तुम्हें यह मिलेगा तथा वह मिलेगा, इस दुनिया के सम्बन्ध में मजहबी आदमी न केवल उपेक्षावृत्ति ही धारण करता है अपितु वह इसे घृणा की दृष्टि से देखता है, परिणाम यह है कि वह अपने जीवन का कुछ समय अत्यन्त कष्ट तथा दरिद्रता में व्यतीत कर चलता बनता है। इसके विपरीत समाजवादी यह शिक्षा देते हैं कि तुम्हें परलोक का विचार त्याग कर इस लोक की चिन्ता करनी चाहिये, परलोक यदि होगा तो स्वयमेव सुधर जायेगा, जब हम इस लोक में कष्टमय जीवन व्यतीत करते रहे तो परलोक पर जिसे आज तक किसी ने नहीं देखा और जो केवल अन्धविश्वास की वस्तु है, कैसे भरोसा किया जा सकता है ?

देश विद्रोही कम्युनिस्ट

साम्यवादी विशेषतया कम्युनिस्ट इस प्रयत्न में रहते हैं कि किसी प्रकार संसार में उनके सिद्धान्तों का प्रचार हो, इसलिये मज़दूरों तथा किसानों को हड़तालों की प्रेरणा करते रहते हैं चाहे उन बेचारों की अपनी कितनी ही क्षति क्यों न होती तो। यह अपनी धुन में मस्त मज़दूरों और किसानों को उभारना ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोच्च साधन समझे हुए हैं, यदि विचारपूर्वक देखें तो यह कम्युनिस्ट वस्तुतः देशद्रोही हैं। क्योंकि वह अपने पथ-प्रदर्शन के लिये सदैव एक विदेशी राज्य रूस की ओर दृष्टि किये रहते हैं और सदैव उसके संकेतों पर नाचते रहते हैं, दूसरे महायुद्ध में जब रूस की जर्मनी के साथ सन्धि हो गई थी तो भारतवर्ष के कम्युनिस्ट जर्मनी के साथ थे किन्तु जब रूस तथाजर्मन में ठन गई तो वह झट जर्मन के दुश्मन वन गए। इनका कोई अपना धर्म ईमान नहीं। ये तो केवल रूस के या चीन के पिट्ठू हैं और वही उनका मक्का व काशी है। कम्युनिस्टों का एक वड़ा सिद्धान्त यह भी है कि End Jestified means साधन चाहे कैसे भी हों उद्देश्य ठीक होना चाहिये, इसी कारण यह हिंसा-अहिंसा, लूट मार, मक्कर फरेब, कतल खून, हरप्रकार से संसार में मजदूर राज्य की स्थापना आवश्यक समझते हैं। बंगाल में जो कुछ आजकल हो रहा है वह इसका एक प्रज्वलन्त उदाहरण है।

हमारे विचार

आइये, अब हम इन सिद्धान्तों का अवलोकन करें कि इनमें कहां तक सत्यता विद्यमान है, हम यह लिख चुके हैं कि साम्यवाद या कम्युनिज्म का सार्वोच्च तथा मौलिक सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक मनुष्य को उसकी आवश्यकतानुसार धन प्राप्त होना चाहिये, न कि उसके कार्यानुसार। ऊपरी दृष्टि से तो यह सिद्धान्त भी चित्ताकर्षक दीखता है कि इसमें दरिद्रों पर दया की गई है किन्तु विचारपूर्वक देखने पर पता चलेगा कि यदि इस सिद्धान्त पर ईमानदारी से आचरण किया जाये तो संसार का सारा ढाँचा ही बिगड़ जाएगा, उदाहरणतया कल्पना कीजिए की कारखानों के अन्दर कार्य करने वाले एक व्यक्ति के घर के मनुष्यों की संख्या (जो उस पर निर्भर है) दस है, तो इस सिद्धान्त के अनुसार उस व्यक्ति को इतना धन देना होगा कि जिस से ग्यारह मनुष्य पल सकें, इस के विपरीत उसी कारखाने के इंजिनियर को जिस के घर के मनुष्यों की संख्या दो है, इस मजदूर से पाँचवां भाग वेतन मिलेगा। इस का परिणाम कितना भयानक होगा यह विचार आते ही हृदय कांप उठता है, प्रथम तो कोई मजदूर भी दिल लगाकर कार्य न करेगा क्योंकि जब उसे विदित होगा कि उसे मजदूरी उसके कार्यानुसार नहीं किन्तु उसकी तथा उसके घर वालों की आवश्यकताओं के अनुसार मिलेगी तो वह व्यर्थ में जान पच्ची करके दुःखी क्यों होगा ? संसार में लोग अधिक श्रम तो इसी कारण करते हैं कि उससे वह कुछ अधिक आय प्राप्त कर सकेंगे किन्तु जब यह लोभ ही न रहेगा तो कोई अधिक श्रम क्यों करेगा ! दूसरे इस से कारीगरी और हस्तकौशल में उत्साहवृद्धि न होगी। जब एक इंजीनियर या डाक्टर देखेगा कि उसके अधीन कार्य करने वाले मूर्ख तथा शिक्षारहित मज़दूर उसके तुल्य या उससे अधिक वेतन पा सकते हैं तो वह पांच साल का इन्जीनियरिंग कालिज तथा छः साल तक मैडिकल कालिज में जान क्यों खपायेगा, कौन सी बात उसे दिन रात एक करके अत्यधिक श्रम द्वारा विद्याप्राप्ति में प्रेरित करेगी ? वह तो यही समझेगा और उसका ऐसा समझना न्याय से उचित भी होगा कि जब मैं इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी केवल उतना ही कमा सकूंगा कि जिस से मेरी आवश्यकताएं पूरी हो सकें तो फिर मैं क्यों न आराम से रहूं तथा पढ़ने-लिखने में क्यों अकारण जान खपाऊं, तीसरी बात यह है कि इससे कारखाने के प्रबन्ध में बड़ी गड़बड़ी होगी क्योंकि जब इंजीनियर को मज़दूर

से भी कम वेतन मिलेगा तो वह उस पर कन्ट्रोल कैसे कर सकेगा तथा उनसे भली भाँति कार्य कैसे ले सकेगा ?

सम्पत्ति की समान बाँट

दूसरा सिद्धान्त जो हमारी समझ से बाहिर है वह सम्पत्ति का समान-वितरण है। कम्युनिस्ट कहते हैं कि सामाजिक संगठन ऐसा होना चाहिए कि जिस में सब एक-समान हों और किसी प्रकार भी एक-दूसरे पर विशेषता न हो ताकि उन में परस्पर ईर्ष्या तथा बदले का भाव उत्पन्न न हो। किन्तु यह तो प्रश्न का केवल एक अंग है दूसरे अंग पर विचार करने से पता चल जायेगा कि यह सिद्धान्त भी अत्यन्त हानिकारक है, प्रथम तो इस सिद्धान्त पर आचरण करने से संसार में आराम-तलबी तथा सुस्ती बढ़ जायगी। संसार में कुछ लोग ही सुखी हैं किन्तु दुःखी अधिक संख्या में हैं। इस सिद्धान्त का अनुकरण करने का परिणाम यह होगा कि सब ही दुःखी हो जायेंगे। जब किसी को अधिक कार्य करने से अधिक आय न होगी तो वह अधिक कार्य करेगा ही क्यों ? सब ही एक लाठी से हाँके जायेंगे और वह दरिद्रता तथा गरीबी की लाठी होगी। खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति में भी कमी हो जायेगी क्योंकि भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने वाली मुकाबले की भावना ही जाती रहेगी तो दुनिया में अनाज की वृद्धि कैसे हो सकेगी ? अतः इस समान-वितरण की नीति से सब को ही दुःखी होना पड़ेगा। उदाहरणार्थ एक आदमी को लीजिये जिसे दो रोटी की भूख है और दूसरे को पाँच की। किन्तु आप सब को तीन २ रोटी देते हैं कि समान-वितरण का सिद्धान्त लागू हो सके तो इस का परिणाम तो यही होगा कि कुछ लोग जो दो रोटी खाने वाले हैं वह तो अजीर्ण रोग से ग्रस्त होंगे या बेईमानी से फालतू रोटियों को नष्ट करने की चेष्टा करेंगे तो इससे हानि राष्ट्र को ही होगी। दूसरी ओर जो पाँच रोटी खाने वाले हैं वह भूखों मरेंगे। परिणाम रूप में दोनों प्रकार के लोग दुःखी रहेंगे। साधारणतया देखा जाता है कि सब मनुष्यों की स्थिति अलग-अलग होती है और उनकी शिक्षा, योग्यता तथा आवश्यकताएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। एक प्रोफैसर के बच्चे का साधारण-ज्ञान (Common Knowledge)एक मज़दूर के बच्चे की अपेक्षा कहीं उत्तम होता है, गाँव के बच्चों की अपेक्षा शहरी बच्चे जहाँ शरीर में कमजोर होते हैं वहाँ साधारण ज्ञान में बहुत बढ़े चढ़े तथा नटखट होते हैं। मज़दूर के लड़के

को खुले जलवायु का लाभ तो प्राप्त है और इस का प्रमाण उनके पुष्ट शरीर से मिलता है किन्तु नगरों के अन्दर घरों में क्योंकि अधिकतर दैनिक पत्र पढ़े जाते हैं, रेडियो सैट लगे हुए हैं, साधारणतया व्याख्यानादि भी होते रहते हैं, अतः साधारण ज्ञान की वृद्धि के विविध साधन उपलब्ध होते हैं। इसलिए साम्यवाद के सिद्धान्तानुसार सब को एक ही डण्डे से कैसे हाँका जा सकेगा ? यदि ऐसा किया जाएगा तो इस का परिणाम तबाही वा बरबादी के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? एक मनुष्य तो अपनी विद्या, बुद्धि तथा कौशल द्वारा एक हजार रुपया प्रतिमास कमा सकता है और दूसरा हथौड़ा चला कर एक रुपया से अधिक प्राप्त नहीं कर सकता तो यह कहाँ का न्याय वा बुद्धिमत्ता है कि शिक्षा सम्पन्न पुरुष की कमाई का अर्द्धभाग यानी पाँच सौ रुपये अकारण ही मजदूर को दे दिया जाय कि जिससे समान वितरण का सिद्धान्त स्थिर रह सके। अतः स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त का अनुकरण करने से यही परिणाम निकलेगा कि सारी व्यवस्था ही बिगड़ जायगी और काम चलना बन्द हो जायगा। रहा यह सिद्धान्त कि सब को आवश्यकता के अनुसार वेतन मिलना चाहिए न कि कार्यानुसार ! साधारणतया तो यह लाभकारक ही दीखता है कि कार्य तो सामर्थ्य के अनुसार लिया जाय तथा वेतन आवश्यकतानुसार दिया जाय किन्तु विचार करने पर जान पड़ेगा कि यह सिद्धान्त भी मनुष्य समाज की जड़ों को खोखला कर देने वाला है। प्रथम तो प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं, इसका अनुमान कैसे हो सकेगा और कौन करेगा ; दूसरे समान-वितरण किये जाने पर यह मोटर, घड़ी, रेडियो, ग्रामोफून तथा टैलीफून जैसी भोग-विलास की वस्तुएं किनको दी जायेंगी तथा किनको न दी जायेंगी ? इन बातों का फैसला कौन करेगा तथा कैसे करेगा ? यह बड़ी-बड़ी उलझनें हैं, जिन्हें सुलझाना अत्यन्त कठिन तथा असम्भव है। तीसरे माना कि वेतन देने में तो आप मनमाने सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए एकता उत्पन्न कर सकेंगे किन्तु किये जाने वाले कार्य में एकता कैसे लाओगे ? उदाहरणार्थ एक दर्जी दिन में केवल पाँच वस्त्र सी सकता है दूसरा उतने ही समय में उसीके सदृश दस सी देता है तो यह कौन-सा न्याय है कि जिसके आधार पर दोनों को एक-समान वेतन दिया जा सके, यदि यह नियम रखो कि काम तो प्रत्येक मनुष्य से उसके सामर्थ्यानुसार लो और वेतन आवश्यकतानुसार दो, तो भी काम न चलेगा क्योंकि यह बात सर्वथा

न्यायविरुद्ध है कि एक मनुष्य से कार्य तो अधिक से अधिक लिया जाय, और वेतन न्यून से न्यून आवश्यकतानुसार दिया जाय, पुनः यह तो साधारण बात है कि निकम्मे तथा निखट्टू लोगों की धन की माँग तो अधिक-से-अधिक होती है किन्तु कार्य के विषय में वह कुछ भी करने के योग्य नहीं होते, तो फिर इनकी आवश्यकताओं को क्यों और कैसे पूरा कर सकोगे ? सच तो यह है कि यह सिद्धान्त ही सर्वोपरि प्रतीत होता है कि सबको उन्नति करने के साधन तो समान रूप से प्राप्त हों किन्तु वेतन योग्यता तथा कार्यानुसार दिया जाये, ऐसा करने से ही मनुष्यों में मुकाबले की भावना पैदा होकर उन्नति के लिए प्रेरणा होती है और यही सच्ची तथा ठीक समानता है ।

कम्युनिज़्म : परीक्षा की कसौटी पर

कम्युनिज्म के अन्य सिद्धान्तों का परीक्षण प्रथम बार रूस में किया गया । सन् १९१७ में इस देश में शान्ति से पूर्व एक महान् विप्लव हुआ और जारशाही का अन्त तथा मजदूर-राज्य का आरम्भ हुआ । चूंकि यह सारा संगठन तथा विधान कम्युनिज्म के सिद्धान्तों के आधार पर खड़ा किया गया था, इसलिये संसार में कम्युनिज्म का कार्यरूप में यह पहिला परीक्षण समझना चाहिये । यह कहाँ तक सफल हुआ है या असफल, यह निम्न लेख से पता लगेगा । पिछले दिनों ब्रिटेन में इण्डिपैण्डैण्ट लेबर पार्टी की एक कान्फ्रैंस हुई थी, उसमें पार्टी के एक उच्च सदस्य मिस्टर डान बेट मैन को ललकारा गया कि उन्होंने जो यह कहा है कि रूस में लखपति मनुष्य विद्यमान हैं और धनवानों के बच्चों को विद्या तथा अन्य क्षेत्रों में दूसरों की अपेक्षा अधिक सुविधाएं प्राप्त हैं तो वह उसका उत्तर दें तथा इस विषय में उनके पास जो भी प्रमाण हों वह प्रस्तुत करें । उन्होंने इस चैलेन्ज को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित लेख लिखा जो वहाँ के पत्र सोशलिस्ट लीडर में प्रकाशित हुआ है । हमारी सम्मति में इस लेख के अवलोकन से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है कि रूस में कम्युनिज़्म का परीक्षण बहुत बुरी तरह असफल हुआ है और कम्युनिस्ट जो बुराइयाँ व त्रुटियाँ पूंजीपति कहे जाने वाले देशों के लोगों में बतलाया करते हैं वे यदि सारी की सारी नहीं तो बहुत सीमा तक उनके अपने पवित्र देश में भी पाई जाती हैं । मिस्टर डान बेट मैन लिखते हैं कि—

सन् १९१७ के विप्लव के पश्चात् रूस में जायदाद रखने की जो

सुविधाएं थी उनका स्थान सोशलिस्ट राज्य प्रबन्ध ने ले लिया था। कारखाने तथा दूसरी बड़ी-बड़ी जागीरें ज़ब्त की गईं, और सोवियट ने, जो मज़दूरों तथा किसानों की सभाएँ थीं जन साधारण की ओर से लाभप्रद विभागों के प्रबन्ध की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी, क्योंकि रूस कारीगरी तथा व्यवसाय में बहुत पिछड़ा हुआ था और जन साधारण में शिक्षा की बहुत बड़ी कमी थी और बाहिर के पूंजीपति देश इसके विरोध पर उधार खाये बैठे थे। इसलिए ये सब बातें मिल मिला कर रूस में केवल एक पार्टी ही राज्यसत्ता का कारण बनी और राज्य-शासक तथा कम्युनिस्ट एकार्थक शब्द हो गये। हालांकि कम्युनिस्ट रूस की कुल जनगणना के सिर्फ़ पाँच प्रतिशत के प्रतिनिधि थे किन्तु इनके हाथ में बेरोकटोक शक्ति आ गई और यह विशेष अधिकार रखने वाली पार्टी बन गई। समाज-निर्माण की नींव इस सिद्धान्त पर स्थिर की गई थी जो कार्लमार्क्स ने आरम्भ काल में बताया था, वह यह कि प्रत्येक मनुष्य को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार रुपया-पैसा मिलना चाहिए न कि योग्यता के अनुसार। किन्तु अब रूस की यह अवस्था है कि कौमी आय के बटवारे का सारा क्रम ही परिवर्तित कर दिया गया है। अब उसे, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार के स्थान पर, किये गये कार्य के परिमाणानुसार कर दिया गया है, यही तो पूंजीपति समाज के सिद्धान्तों में से एक है। यू. एस. एस. आर. (सोवियट रूस) में वेतन के दरों में भारी विभिन्नता का यह फल हुआ है कि वहाँ समाज में एक नवीन तथा विशेष अधिकारों वाली जमात पैदा हो गई है, बजाय इसके कि विप्लव का फल समानता तथा आर्थिक प्रजातांत्रिक राज्य की क्रमशः वृद्धि होती, उसके सर्वथा विपरीत परिणाम निकला है और अब पूंजीपति देशों की अपेक्षा रूस में विभिन्न प्रकार के लोगों को वेतन देने के बारे में भारी अन्तर पड़ गया है। लैनिन के काल में कारखानों में जो मजदूरी दी जाती थी उसमें एक और तीन का भेद था किन्तु आज बड़े-बड़े कारखानों में वेतन के दर का अन्तर एक तथा बीस का अन्तर है लगभग यही अवस्था अन्य देशों में है जहाँ कारखानों में सबसे कम वेतन का दर २५० पौंड वार्षिक है और सबसे अधिक वेतन का दर जो डायरेक्टरों तथा मैनेजरों को दिया जाता है, लगभग पाँच हजार पौंड वार्षिक है, हाँ अन्य देशों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि वहाँ एक भारी आय कर (टैक्स) लगा हुआ है।

लखपति पादरी

रूस और जर्मनी के बिलकुल पहिले रूसी इन्कम टैक्स के विवरण के अनुसार रूसी औसत आमदनी १९४१ में तीन हजार चार सौ सड़सठ थी किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे (जिनकी संख्या कुछ भी न थी) जिनकी आमदनी ३ लाख रुबल से ज्यादा थी (देखो मौरिस एम शफील्ड की पुस्तक रूस में सम्पत्ति के अधिकार, राष्ट्रों का परस्पर समझौता नम्बर ३७५ दिसम्बर सन् १९४१) एक और मनुष्य अलैग्ज़ण्डर वर्थ ने जंग के दिनों में पत्र 'सण्डे टाईम्ज' में एक लेख लिखा था (वर्थ पर सोवियत रूस के विरूद्ध विचार रखने का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता) जिसके मध्य में उसने लिखा कि इस समय भी रूस में लखपति विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ काज़िक स्थान में कार्ल मार्क्स कलैक्टिव फार्म के चेयरमेन ने जंगी कर्जे में दस लाख छत्तीस हज़ार रुवल दिये थे। जंग के दिनों में पत्र 'प्रावदा' में ऐसी सूचनाएं नियमपूर्वक छपा करती थीं कि अमुक-अमुक व्यक्ति ने युद्ध में सहायतार्थ इतना ऋण तथा दान दिया है। 'प्रावदा' ने सूचना दी थी कि यू. एस. एस. आर. के आर्थोडैक्स रैन वेटिड चर्च के सबसे प्रमुख पादरी वैण्डनेकी ने नकदी तथा सम्पत्ति के रूप में लगभग पाँच लाख रुबल दिये थे। मुझे आश्चर्य है कि सच्चाइयों के होते हुए भी इण्डिपैण्डैण्ट लेबर पार्टी के ज़िम्मेदार सदस्य रूस में लखपति मनुष्य की विद्यमानता से इन्कारी करते हैं हालाँकि कुछ वर्ष हुए एक बिशप लाट पादरी ने एक लघु पुस्तिका लिखी थी जिसका शीर्षक था, रूस में लखपति, यह लघु-पुस्तिका रूस में नवीन सोसाइटी के लिए ही लिखी गई थी जिस में उन आक्षेपों का उत्तर दिया गया था जो रूस में सम्पत्ति के असमान वितरण के विषय में किये जाते थे। बिशप साहब ने लखपतियों की विद्यमानता से इन्कार नहीं किया और वह इतने ज़ोरदार प्रमाणों की उपस्थिति में कर भी न सकते थे। हाँ उन्होंने यह कहा कि इन लखपतियों ने यह धन-सम्पत्ति कठोर श्रम करके जमा की थी। क्या एक-एक पूंजीपति दुकानदार भी यही बात न कहेगा? इसके अतिरिक्त बिशप साहिब लिखते हैं कि यदि एक मनुष्य के पास लाखों रुबल विद्यमान हैं तो भी यह बात सोशलिस्ट सामाजिक विधान के विरुद्ध नहीं कही जा सकती क्योंकि ऐसे लखपति के आगे-पीछे के हालात उसकी सम्पत्ति की अधिकता के कारण से नहीं अपितु उनकी प्राप्ति के साधनों तथा अन्य लोगों से अनुचित लाभ उठाने के वास्ते उसके प्रयोग के कारण हैं। यदि ये

विचार सोशलिस्ट फिलासफी के लिये ग्राह्य भी हों तो भी हम यह जानना चाहेंगे कि पादरियों ने इतनी सम्पत्ति कहाँ से एकत्रित कर ली ? इन युक्तियों का खण्डन इस सत्य बात से हो सकता है कि ये लखपति तथा सम्पत्तिशाली रूसी अपने साथियों की लूट खसूट करते हैं, ये यह कार्य सरकारी कर्ज़ों में लगा कर करते हैं, जहां उनको चार प्रतिशत वार्षिक सूद प्राप्त होता है । यदि यह सब कुछ पूंजीपतियों की लूट खसूट की नींव नहीं है तो फिर हम वर्षों से शासकों के विरुद्ध हमले करने में बड़ी भूल करते रहे हैं ।

रूस में ब्लैक मार्केट या चोर बाजारी

सम्पत्तिशाली रूसी अपनी सम्पत्ति को ऐसे भोग-विलास की वस्तुओं की प्राप्ति पर व्यय करते हैं जो साधारण मज़दूरों को प्राप्त नहीं हो सकतीं । रूस में चोरबाजारी सरकारी मशीनरी द्वारा चलाई जाती है, जिस के प्रमाण रूप में हम बिशप का ही प्रमाण देते हैं जो एक प्रमुख कम्युनिस्ट लीडर है । वह लिखता है कि युद्ध के दिनों में आक्रमण के दिन से ही खाद्य पदार्थों का बहुत बड़ा भाग राशन द्वारा दिया जाने लगा था । हाँ अल्प मात्रा में ये वस्तुएं उन साधनों द्वारा प्राप्त हो सकती थीं जो साधारण सप्लाई के प्रकार से बाहिर थे, यथा सामूहिक किसानों के छोटे-छोटे निजी भण्डारों से प्राप्तव्य थीं, इनको छूट थी कि वह निजी वस्तुओं की जो भी कीमत बाज़ार में मिल सके प्राप्त करलें या दूसरे शब्दों में राशन की दुकानों से अतिरिक्त ऐसी दुकानें भी थीं जहां फालतू खुराक बढ़ी चढ़ी कीमतों पर विक्रय होती थी और जहां से केवल अमीर मनुष्य ही मोल ले सकते थे और यह सब कुछ उन दिनों में किया जाता था जब रूसी मजदूर साधारणतया भूखों मर रहे थे ।

रूसी सेना का वेतन

सुर्ख फौज में यहाँ सिपाहियों को शर्मनाक तौर पर कम राशन मिलता है । एक साधारण सैनिक का वेतन १०½ रुबल मासिक है, इस के मुकाबले में अफसरों को जब वह ट्रेनिंग कालिजों में प्रवेश करें छः सौ रुबल मासिक और जब वह कमीशन लेकर नियमपूर्वक सेना में प्रविष्ट हों तो आठ सौ से १३ तेरह सौ रुबल पर्यन्त दिये जाते हैं । एक कप्तान का वेतन उन्नति करते हुए क्रमशः सत्रेह सौ रुबल तक और एक पूरे करनैल का

२४ चौबीस सौ मासिक पर्यन्त हो सकता है; एक साधारण सैनिक सिपाही को अपनी धर्मपत्नी के निर्वाहार्थ कोई भत्ता नहीं दिया जाता । हाँ प्रत्येक बच्चे के लिये ६० साठ रुबल मिलते हैं ।

मकानादि

सारी रूसी कहानी का आश्चर्यजनक अंग यह है कि वहाँ भी शासक वर्ग का व्यवहार सर्वथा वैसा ही है जैसा कि यूरोप में उनके भाई-बन्धुओं का है । युद्ध के दिनों में अमरीकन मैगजीन 'लाईफ' में एक रूसी फिलम डायरेक्टर ग्रैगोगी अलैग्ज़ैण्डरोव और उसकी धर्मपत्नी फिलम स्टार लिनबोब और लोवा अलेग्जैण्डरोव के जीवन के सम्बन्ध में एक लेख निकला था । इस लेख में एक मुलाकात का विवरण दिया गया था जो रिसाला "लाईफ" के एक संवाददाता मिस्टर कल्डबैलर ने की थी । इसमें बहुत सी तसवीरें दी गई थीं जो मुलाकात के मध्य में ली गई थीं । उन में से एक तसवीर उसके गाँव के मकान की थी जिस की देखरेख छः नौकरों के हाथ में थी, और लोवा ने देशप्रेम से प्रेरित होकर अपने चार नौकर कारखानों में काम करने के लिये भेज दिये थे । रूस में सबसे अधिक सम्पत्तिशाली मनुष्य अलैक्सी टालस्टाय को कहा जाता है, यह व्यक्ति एक लेखक था और उसके पास २५ पचीस लाख रुबल विद्यमान था । इस के अतिरिक्त उस के पास एक देहाती कोठी और आर्ट की वस्तुओं का एक शानदार सुन्दर भण्डार भी था यह भी एक अद्भुत बात है कि ब्रिटेन में शासक वर्ग टैक्सों के बोझ में इतनी बुरी प्रकार से दबा हुआ है कि यह अपने देहाती मकानों तथा आर्ट की वस्तुओं के भण्डार को विक्रय करने पर बाधित हो रहा है और वे शनैः शनैः गवर्नमैण्ट या म्युनिसिपल कमेटियों के हाथों में जा रहे हैं । पिछले दिनों एक अमरीकन दूत मिस्टर डेवीज़ की लिखी एक पुस्तक छपी थी जिसे स्टालिन के पक्षपोषक रूसी पत्रों ने बहुत सराहा था । इस पुस्तक में रूस की वर्तमान अवस्था की बहुत अच्छी तसवीरें खेंची गई थीं और इसी कारण उस की इतनी प्रशंसा की गई थी । हम उस पुस्तक में से निम्न उद्धरण देते हैं:—"रूस के वजीर बहुत सुन्दर ढंग से अपना जीवन व्यतीत करते हैं और इन में से बहु संख्या के लिए समीप देहात में निवास करने के लिये कोठियां विद्यमान हैं ।" मिस्टर डेविज ने इसी प्रकार की एक कोठी के आँखों देखे हालात लिखे हैं । वह लिखता है कि यह एक बड़ी सुन्दर ग्रामीण सम्पत्ति थी । ये वज़ीर लोग सचमुच बड़ा

अमीराना जीवन व्यतीत करते हैं। वह क्रैमलन में रहते हैं या गाँव या दोनों स्थानों में। रूस में रहने वाले लोगों में परस्पर इतनी विभिन्नता का कारण यह बतलाया जाता है कि वहां पर किराया खाने वाले लोग विद्यमान नहीं हैं किन्तु यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जैसा हम लिख चुके हैं कि रुपया पैसा सरकारी कर्ज़ों में लगाया जा सकता है जिस से सूद की आय प्राप्त होतीहै

निजी सम्पत्ति का विधान द्वारा रक्षा

१९३६ में स्टालिन कमीशन की भारी प्रशंसा की गई थी कि इस ने बहुत भारी सफलता प्राप्त की है। हम नीचे इस के बनाये विधान की दफा दस का अनुवाद लिखते हैं—"नागरिक लोगों के निजी सम्पत्ति रखने के अधिकार को विधान (कानून) द्वारा सुरक्षित किया गया है। यानी उनकी निजी सम्पत्ति की जो उन्होंने काम की आय द्वारा प्राप्त की हो, अथवा अपनी कमाई में से बचाई हो, या निवास के मकान के रूप में हो, या गृह के सामान के रूप में हो या घरेलू फर्नीचर बर्तनों और निजी प्रयोग की वस्तुओं के रूप में हो। नागरिकों का अपनी निजी सम्पत्ति को अपने उत्तराधिकारियों के लिये छोड़ने का हक भी विधान द्वारा सुरक्षित है।

मुफ्त शिक्षा का सफाया

इसके यह अर्थ हैं कि सम्पत्ति एक नस्ल से दूसरी को दी जा सकती है और शासक वर्ग अपने लिये पूंजीवाद के सारे सिद्धान्त स्थिर रखना चाहता है। किसी भी समाज में शासक वर्ग का प्रथम नियम यह होता है कि वह अपनी सम्पत्ति और विशेष अधिकारों को स्वसन्तान के लिये देकर अपनी शक्ति को स्थिर बना सके, रूसी शासन इस विषय में किसी से भी भिन्न नहीं। तीन अक्तूबर सन् १९४० को मुफ्त शिक्षा के सारे सोवियत विधान का सफाया कर दिया गया था, हालांकि नागरिक अधिकारों के विधान की दफा १२१ के यह सर्वथा विरुद्ध था, क्योंकि इस दफा में यह निश्चित किया गया था कि सोवियत रूस में तमाम नागरिकों को निःशुल्क शिक्षा दी जायगी किन्तु नए विधान द्वारा शिक्षा शुल्क द्वारा कर दी गई है। इस विधान द्वारा आठवीं नवीं तथा दसवीं श्रेणी के विद्यार्थी शहरों में दो सौ रुबल तथा ग्रामों में १५० रुबल शुल्क देते हैं जो एक साधारण मजदूर के एक मास के वेतन के बराबर है। हाईस्कूलों तथा कालिजों के विद्यार्थी शहरों में ४०० सौ रुबल तथा ग्रामों में ३०० सौ रुबल शुल्क-रूप में देते हैं। हाँ, अमीर लोगों के बच्चों को शिक्षा कीबहुत-सी सुविधाएं प्राप्त हैं क्योंकि उनके माता-पिता उन्हें अच्छे से अच्छे

स्कूलों में शिक्षा दिलाने का सामर्थ्य रखते हैं। भारत में भी आजकल हम निःशुल्क शिक्षा दे रहे हैं जिससे निर्धन वर्ग के बच्चों को अपनी योग्यता में वृद्धि का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होगा और दरिद्रता उनके मार्ग में बाधक न हो सकेगी। वस्तुतः रूसी मनमानी हकूमत की पाशविक कृतियों से सोशलिज्म के नाम को धब्बा लगा रहे हैं।

यह स्पष्ट है कि रूस में कम्युनिज्म या साम्यवाद का क्रियात्मक परीक्षण सर्वथा असफल हुआ है और इसके सारे मौलिक सिद्धान्तों में परिवर्तन करना पड़ा है। आवश्यकतानुसार वेतन का नियम बदल कर कार्यानुकूल वेतन का नियम लागू कर दिया गया है और निजी सम्पत्ति के निषेध या सम्पत्ति के समान वितरण के नियम को भी छोड़े हुए विधान द्वारा निजी सम्पत्ति को सुरक्षित कर दिया गया है और प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी इकट्ठी की हुई धन-सम्पत्ति को अपने उत्तराधिकारियों को पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में दे सके। पूंजीवादी देशों में भी तो लोग यही कुछ करते हैं, पुनः उनके विरुद्ध जो साम्यवादी घृणित आक्रमण करते रहे या करते हैं वह सर्वथा निन्दनीय तथा निरर्थक नहीं तो और क्या हैं? रूस में जो सैनिकों को वेतन दिया जाता है उसमें भी आकाश-पाताल का अन्तर है। सम्पत्तिशाली व्यक्तियों को बच्चों को शिक्षा-दीक्षा की जो सुविधाएं प्राप्त हैं वे सर्वसाधारण लोगों के स्वप्न में भी नहीं आ सकतीं। तात्पर्य यह कि रूस में साम्यवाद के एक-एक सिद्धान्त को क्रियात्मक परीक्षण की कसौटी पर परखा गया तो वह शुद्ध स्वर्ण के स्थान पर पीतल सिद्ध हुआ और रूसी शासकवर्ग को उसे परिवर्तित करने पर बाधित होना पड़ा।

रूसी इम्पीरियलिज़्म

रूस में आजकल भी डिक्टेटरशिप चल रही है और साम्यवादी पूंजीपतियों के राजनीतिक विधान के विरुद्ध जो-जो आक्षेप किया करते थे यदि वे सारे के सारे नहीं तो बहुत बड़ी सीमा तक स्वयं रूस के राजनीतिक विधान पर लागू हैं। कम्युनिज्म इस बात का अत्यन्त विरोधी था कि कोई देश किसी अन्य देश को अपने अधीन बनाये, इसी कारण साम्यवादी इम्पीरियलिज्म का घोर विरोध किया करते थे किन्तु अब यही रोग रूस में भी आ गया है और रूसी कम्युनिस्ट अपने राज्य-शासन को बढ़ाने का सरतोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। वास्तव में बात यह है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह राज्य की व्यवस्था के विना सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत

नहीं कर सकता। मनु महाराज अपने धर्मशास्त्र में लिखते हैं कि जब सारी प्रजा सोती है तो दण्ड (कानून) जागता है, केवल राज्य विधान ही तो है, जो चोरों, बदमाशों, लुटेरों तथा घातकों को वश में रखता है, जहाँ अराजकता होती है वहां 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त लागू हो जाता है और गरीबों का जीने तक का अधिकार समाप्त कर दिया जाता है। बस साम्य-वादियों का State यानी राज्य प्रवन्ध के सिद्धान्त के विरुद्ध बातें बनाना अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ा चलाना नहीं तो और क्या है? राजा तथा प्रजा का अटूट सम्बन्ध है, इस विषय में वेद भगवान् ने क्या ही उत्तम शिक्षा दी है जो किसी अन्य साम्प्रदायिक पुस्तक में नहीं मिल सकती, वेद कहता है कि—

इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यैपुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।

यजु०—अ०—६, म०—४०

इस का भावार्थ यह है कि ईश्वर आज्ञा देते हैं कि हे विद्वान् लोगो! तुम अतुल राज्य धर्म और अत्यन्त ज्ञान वृद्धि और व्यवहार स्थापन के लिए विद्वान् लोगों तथा इस प्रजा को ठीक-ठीक सुख पहुंचाने के लिये अच्छे प्रबन्धकारी तथा शत्रुरहित सौम्य स्वभाव वाले प्रसिद्ध माता-पिता के पुत्र या राजा (सभा-अध्यक्ष) बनाओ। राजा-प्रजा का प्रबन्ध धर्म तथा न्याय पर स्थित होना चाहिये और यही बात इस मंत्र में बड़ी सुन्दरता से दर्शाई गई है।

भ्रातृ-भाव

यह सत्य है कि साम्यवादी वाणी से तो भ्रातृ-भाव का बहुत प्रचार करते हैं और दिन रात यह कहते नहीं थकते कि संसार में जब तक ऊंच नीच का भेदभाव दूर नहीं होगा, मनुष्य सुख शान्ति से जीवन व्यतीत न कर सकेंगे। यही कारण है कि वह अपने प्रचार में विश्वप्रेम की भावना पर बहुत बल दिया करते हैं। किन्तु यदि विचार किया जाय तो साम्यवाद के सिद्धान्तों से संसार में विश्वप्रेम की भावना का प्रसार यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन जरूर है, जहाँ भी स्वार्थ आया प्रेमभाव लुप्त हुआ, यह प्रेमभाव बाह्य रूप से बल देने पर उत्पन्न नहीं हो सकता। यह तो एक आन्तरिक भाव है, केवल बाह्य दिखावट से काम नहीं चल सकता।

सामाजिक विधान

शेष रहा सामाजिक विधान का विषय ! कौन है जो इस बात से आँख मूँद सकता है कि संसार में जितने भी मनुष्य रहते हैं वे सब न तो कभी एक जैसे विचार, भाव, योग्यता तथा शक्ति से सम्पन्न हुए हैं और न होंगे । जब यह बात सोलह आने सत्य है कि एक त्यागी ब्राह्मण के पड़ोस में एक चोर डाकू भी रह सकता है तो सबको एक ही रस्सी से कैसे बांधा जा सकेगा और सारे भेदभाव मिटाकर ऊपरी समानता कैसे लाई जा सकेगी ? इसके अतिरिक्त संसार में यह भी देखा जाता है कि खून पानी की अपेक्षा गाढ़ा होता है । खूनी रिश्ते वालों में दूसरों की अपेक्षा प्रेम तथा प्यार की भावना अधिक होती है, एक माता को अपना बच्चा ही सबसे अधिक सुन्दर प्रतीत होता है, इसलिए प्रेम-भावना में भी डण्डा ही काम नहीं देता । इकबाल ने क्या ही अच्छा कहा है :—

पुख्ता होती है अगर मसलेहत अन्देश हो अकल
प्रेम हो मसलेहत अंदेश तो है खाम अभी ।

यानी बुद्धि यदि परिणाम को सोचने वाली हो तो वह परिपक्व होती है किन्तु प्रेम यदि परिणाम को सोचे तो वह अभी कच्चा है । अतः प्रेम की भावना किसी सिद्धान्त पर अवलम्बित होनी चाहिए । केवल समानता-समानता का ढोल पीटते जाने का कोई लाभ नहीं । संस्कृत में एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसे स्कूलों के साधारण विद्यार्थी भी जानते हैं और वह यह है—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः ।।

पराई स्त्रियों को माता के समान, पराई सम्मत्ति को मिट्टी के ढेले के समान और प्राणिमात्र को अपनी आत्मा के समान जो समझता है वही पण्डित है । साम्यवाद जिस योरुप की उपज है वहाँ पराई स्त्री को माता के सदृश समझना तो एक ओर, अधिक समय नहीं बीता कि स्त्री के शरीर में आत्मा का निवास भी न माना जाता था । कहने की आवश्यकता नहीं कि इस श्लोक में दी गई शिक्षा का अनुकरण किया जाए तो संसार में चिरस्थायी विश्वप्रेम स्थापित हो सकता है । वेद भगवान् ने इस सम्बन्ध में कैसी सुन्दर तथा युक्तियुक्त शिक्षा दी है यह हम आगे चल कर बतायेंगे । यहाँ तक तो केवल इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि साम्यवादी की विश्व-प्रेम की भावना का विचार केवल विचार ही विचार है और इसे क्रियात्मक रूप देना अत्यन्त ही कठिन तथा असंभव है ।

धर्म का विरोध

अब रह गया धर्म के विरुद्ध साम्यवादियों का आन्दोलन ! यह भी कोई बुद्धिमत्ता पर निर्भर नहीं, वे आजकल भोग-प्रधान बन रहे हैं जो हर वस्तु को सांसारिक भोग-विलास तथा सुख-सम्पत्ति के गज से नापते हैं ।
अकबर इलाहाबादी ने क्या ही अच्छा लिखा है कि—

मजहब ने पुकारा ए अकबर अल्लाह नहीं तो कुछ भी नहीं ।
यारों ने कहा यह कौल गलत तंख्वाह नहीं तो कुछ भी नहीं ।।

कम्युनिस्ट परमात्मा और धर्म के विरुद्ध लट्ठ लिये फिरते हैं । वे कहते हैं कि संसार की सब खराबियों का मूल यही है । यह सर्वसाधारण के लिये वही काम देता है जो मूर्ख माताएं बच्चे को सुला कर स्वयं घर के काम-काज में सुविधा प्राप्त करने के लिये अफीम से लिया करती हैं । सम्पत्तिशाली तथा शासकवर्ग ने इस विचार से कि वह मनमानी करते रहें और उन्हें कोई पूछने वाला न हो अपने अधिकार तथा धर्म का हौवा घड़ रखा है । जब तक इसको जड़ मूल से नष्ट न किया जावेगा, संसार में सुख-शान्ति नहीं हो सकती । इसी कारण वह ईश्वर तथा धर्म के घोर विरोधी हैं, यह भोले लोग भूल जाते हैं कि यदि संसार में कोई कर्म-फलप्रदाता सत्ता न मानी जाय तो सभ्यता और सदाचार की नींव ही हिल जाती है । यदि हमारे कर्मों को देखने और उनके अनुसार फल-प्रदाता कोई सत्ता ही नहीं है तो बतलाइये एक मनुष्य क्यों नेक बने ? किसी को राह-बाट चलती हुई कोई स्त्री सुन्दर तथा चित्ताकर्षक दीखती है और वह उसे अपने वश में लाने की शक्ति भी रखता है तो कौनसा भय तथा अन्य कारण है जो उसे उसपर हाथ डालने से रोक सकता है ? साम्यवादी अधिक से अधिक यह उत्तर दे सकते हैं कि Law of Relation प्रतिकार का नियम । शक्तिशाली मनुष्य जानता है कि यदि मैंने किसी अन्य स्त्री पर हाथ डाला तो कल को कोई मेरी स्त्री पर भी हाथ डाल देगा । बस प्रतिकार का यही भय है जो उसे ऐसे निन्दनीय कर्म से रोक रहा है किन्तु हम कहते हैं कि उस व्यक्ति की अपनी स्त्री ही न हो और वह अविवाहित हो तो उसे क्या ऐसा अधिकार है ? इसके अतिरिक्त यदि उसे धन, जन, बल तथा बाहुबल नामी प्रत्येक प्रकार के बल प्राप्त हों तो क्या ऐसा मनुष्य दूसरे की स्त्री पर अधिकार जमाने का अधिकारी है ? इसका साम्यवादियों की ओर से कोई

उत्तर नहीं हो सकता । यहां हमने उदाहरणार्थं एक निन्दनीय कर्म का ही उल्लेख किया है। नहीं तो सत्य बात यह है कि यदि कर्म-फलप्रदाता ईश्वर की सत्ता से इन्कार किया जावे तो सारे सदाचार सम्बन्धी नियमों की नींव ही हिल जाती है और मनुष्य-समाज का खड़ा किया भवन विरोध की आँधी के पहले झोंके से ही भूमि पर आ गिरेगा। पिछले दिनों में अम्बाला छावनी में जैनी भाइयों की ओर से एक डिबेट रखी गई थी और इन पंक्तियों के लेखक को भी इस में भाग लेने के लिये निमन्त्रित किया गया था। हमने यही युक्ति वहाँ भी दी थी। उस पर एक साहब उठ कर बोले कि उन्हें यह बात युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती क्योंकि उदाहरणार्थ पं० जवाहरलाल नेहरु न तो ईश्वर को मानते थे और न ही धर्म को। किन्तु फिर भी बड़े सभ्य और सदाचारी बुज़ुर्ग थे। कौन है जो उनके सदाचार पर उंगली उठा सके ! फिर कर्म-फलप्रदाता ईश्वर तथा धर्म की आवश्यकता कहाँ रही ? उस पर हमने उन साहिब की सेवा में निवेदन किया कि हम मानते हैं कि पं० जवाहर-लाल सदाचारी पुरुष थे और वह ईश्वर और धर्म को भी नहीं मानते थे यदि वह ईश्वर तथा धर्म को मानने वाले होते तो—

महात्मा गाँधी

बन जाते। केवल यही न्यूनता है जो उन्हें दूसरे दर्जे पर रख रही थी। महात्मा गांधी तथा पं० जवाहरलाल नेहरु हमारे देश के प्रमुख नेता थे। दोनों ही सभ्यता तथा सौजन्य की मूर्ति थे किन्तु एक धर्म तथा ईश्वर-विश्वासी थे, इसी कारण वह संसार के सबसे बड़े आदमी बने। और उसको उसके घोर शत्रु भी दया का अवतार कहते हैं किन्तु पं० जी को यह महत्ता प्राप्त नहीं हुयी। बात वास्तव में यह है कि साम्यवादी लोग हर विषय को ओपरे दिल से सोचते हैं। यदि वे सूक्ष्मता से विचारें तो विदित हो जाय कि संसार में ईश्वर को कर्मफल-प्रदाता मानने के सिद्धान्त ने ही शान्ति तथा अमन स्थिर कर रखी है यह और बात है कि सिरफिरे साम्यवादी जो बात की तह को पहुँचते हुए केवल इधर-उधर की बातों के पीछे लग लेते हैं, आस्तिक लोगों को पागल तथा बुद्धिमान् समझते हैं।

वह जिस बोली में करती आपका जिक्र अपने फादर से
मगर आप अल्लाह २ करता है पागल का माफक है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो इन पागलों ने ही दुनिया को सीधे

मार्ग पर रखा है। ये पागल ही हैं जो संसार में ईश्वर तथा धर्म का उपदेश देकर बुरे से बुरे मनुष्य को भी सीधे मार्ग पर लाते हैं। नहीं तो सत्य बात तो यह है कि गवर्नमैण्टों के तोप तलवार बन्दूक हवाई जहाज और कठोर से कठोर दण्ड-विधान भी मनुष्यों को ठीक मार्ग पर लाने में समर्थ नहीं होते। उदाहरणार्थ हम जिला रोहतक के प्रसिद्ध मुगला नामक डाकू का ज़िक्र यहाँ करते हैं। यह मनुष्य एक इश्तहारी मुजरिम प्रमाणित दोषी था और राजा की ओर से उसकी गिरफ्तारी के लिए इनाम मुकर्रर था। एक बार आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रमुख महोपदेशक श्री पंडित गणपति शर्मा जी, जो अपने ज्ञान के कारण कणाद मुनि कहे जाते थे, आर्यसमाज रोहतक के वार्षिक उत्सव पर सम्मिलित हुए। एक बैठक में उनका व्याख्यान हो रहा था, जिसका विषय कर्मफल था। पं० जी ने अकाट्य युक्तियों तथा प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया कि मनुष्य जैसे कर्म करता है वैसा ही फल पाता है, जो जैसा बोएगा वैसा ही काटेगा।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

यानी किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलेगा, चाहे वे भले हों अथवा बुरे। जो करता है वही भोगता है, दूसरा उसके स्थान पर नहीं भोग सकता। यदि मैं रोटी खाऊं तो मेरी ही भूख निवृत्त होगी, मेरे भाई की नहीं। यदि मैं डाका डाल कर या चोरी करके धन लाता हूं और उससे सारा परिवार पलता है तो डाका अथवा चोरी का फल तो मुझे ही भुगतना होगा न कि घर वालों को। किन्तु घर वाले मुझे यह तो नहीं कहते कि मैं चोरी या डाका मार कर रुपया या पैसा लाऊं? हां यदि वह कहते तो कुछ अंश में फल के भागी हो भी सकते थे अन्यथा नहीं। मुग़ला भी पुलिस की दृष्टि से बचता बचाता इस भीड़ में, जो अवसर पर इकट्ठी थी, सम्मिलित होकर व्याख्यान सुनने लगा। जब उसने पंडित जी के मनोहर उपदेश तथा सहज से समझ में आने वाली अकाट्य युक्तियों को श्रवण किया तो उसका समस्त शरीर कांप उठा। उसने सोचा कि क्या मुझे अकेले को ही सारे अशुभ कामों का फल भुगतना पड़ेगा। यह तो बहुत दुःख की बात है, उत्सव समाप्त होने पर उसने लोगों से पूछा कि यह व्याख्यानदाता कौन था? लोगों ने बतलाया कि वह आर्यसमाज के प्रसिद्ध महोपदेशक पंडित गणपति शर्मा हैं। मुगला पूछता हुआ उनके स्थान पर पहुँचा, हाथ जोड़ कर प्रश्न किया कि महाराज जब खाने में

सब घर वाले सम्मिलित हैं तो कर्म भोगने में क्यों न होंगे ?पंडित जी ने उसे नरमी तथा प्रेम से समझाया कि वेद और शास्त्र यही शिक्षा देते हैं कि जो करता है और जैसा करता है वही और वैसा ही फल भोगता है। सारांश यह कि मुगला पर पंडित जी के इस हृदयग्राही सदुपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने उसी क्षण से चोरी और डाका जैसे निन्दनीय कर्मों के त्याग का दृढ़ निश्चय कर लिया और बेधड़क स्वयं थाने चला गया और थानेदार से कहने लगा कि 'आइये मुझे हथकड़ी लगाइये' मैं मुग़ाला ही हूं। किन्तु वह मुग़ाला नहीं जिसके पकड़ने के लिए सरकार की ओर से विज्ञापन निकाले गए हैं। यह वह मुगला नहीं किन्तु वह अन्य ही मुगला बन चुका है। इस की काया पलट हो चुकी है और उसका श्रेय यदि किसी को प्राप्त हो सकता तो वह आर्यसमाज तथा इसके मान्य उपदेशक पंडित गणपति शर्मा को प्राप्त है। तात्पर्य यह कि मुग़ाला जो किसी वक्त एक ज़बरदस्त डाकू था, चोर था, धर्म का अंकुर हृदयभूमि पर फूटने से इतना नेक तथा सच्चरित्र मनुष्य बन गया कि बीस-बीस मील की दूरी पर जहां भी आर्य समाज का उत्सव होता वहाँ जाता। घर से आटा बाँध कर ले जाता और अपने हाथों रोटी बनाता तथा आर्य समाज का दिन रात कार्य करता। जो काम पुलिस तथा राज्य का दण्ड विधान न कर सका वह एक उपदेशक के धर्म-उपदेश ने कर दिया और एक प्रमाणित अपराधी की काया पलट करके उसे एक नेक नागरिक बना दिया। तात्पर्य यह है कि धर्म और ईश्वर को कर्मफलप्रदाता मानने का सिद्धान्त ही है जिसने संसार को अभी तक ठीक मार्ग पर रखा हुआ है, यदि साम्यवाद का नास्तिकता-पूर्ण प्रचार सफल हो जाय तो संसार में घोर अन्धकार का राज्य हो जाय और अनाचार की इतनी वृद्धि हो कि मानव मानव को खाने लग जाय। यह धर्म ही है जो संसार में त्याग तपस्या तथा मितव्ययिता को प्रोत्साहित करता है। इसके बिना यह विशेषताएं समाप्त हो जायेंगी। जरा विचार तो कीजिये, एक आदमी चार दिन का भूखा है, उसकी भेंट एक सप्ताह भर से भूखे से होती है। अब साम्यवाद-पक्ष-पोषक पाश्चात्य मतानुगामी प्रचारकों का तो यह मन्तव्य है Survival of the Fittest कि जीने का अधिकार सबसे अधिक शक्तिशाली ही को है वह निर्बल को जीने तक का अधिकार देने में भी ननु नच करते हैं। बस उनके सिद्धान्तानुसार

तो पहले मनुष्य की खाल तक उतार लेनी चाहिये और किसी प्रकार भी हो अपनी रक्षा करनी चाहिए किन्तु दोस्तो ! यहां धर्म आड़े आता है और कहता कि यह तो हिंसक पशुओं की वृत्ति है कि केवल शक्तिसम्पन्न को ही जीने का अधिकार दिया जावे। मनुष्यता की मांग तो यह है कि स्वयं जीओ तथा दूसरों को जीने दो। भाई मैं चार दिन का भूखा हूं और मेरे द्वार पर आकर रोटी की भिक्षा करने वाले ने सप्ताह भर से रोटी का मुख नहीं देखा और दैवयोग से मुझे चार दिन के पश्चात् कहीं से खाना मिल गया है तो धर्म कहता है कि बाँटकर खा और अपने भोजन में से निकालकर उसे भी दे ताकि वह भी अपने शरीर तथा आत्मा के सम्बन्ध को स्थिर रख सके। साम्यवादी धर्म का विरोध करते हुए जो यह कहा करते हैं कि धर्म संसार से उपरत रहने तथा जीवन को कष्ट और दरिद्रता में व्यतीत करने की शिक्षा देता है, यह उनकी भूल है। संभव है पाश्चात्य मतों यानी ईसाइयत तथा इस्लाम की ऐसी ही शिक्षा हो और वह संसार तथा साँसारिक ऐश्वर्य को घृणा की दृष्टि से देखते हों किन्तु वैदिक धर्म जो एक ही सच्चा तथा ईश्वरीय धर्म है वह मनुष्यमात्र को ऐसी शिक्षा नहीं देता। जहां मानवीय धर्म यह शिक्षा देते हैं कि तुम्हारा ध्येय ठीक होना चाहिए उसकी प्राप्ति के साधन चाहे कैसे भी क्यों न हो, वहाँ वैदिक धर्म यह शिक्षा देता है कि तुम्हारे साधन ठीक होने चाहिएं, परिणाम अपने आप ठीक निकल आयेगा। गीता में कृष्ण जी यही कहते हैं कि.—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने का है, फल की चिन्ता उसे न करनी चाहिये। शुभ कर्मों का शुभ फल तथा अशुभ कर्मों का अशुभ फल मिलना आवश्यक है। जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है अतः हमारे साधन नेक तथा शुभ होने चाहिये, परिणाम अपने आप शुभ और शुद्ध निकल आयेगा। यह पन्थाई तथा अन्धविश्वास रखने वाले मत यह शिक्षा देते हैं कि रुपया पैसा कभी एकत्र न करना चाहिये। मनुष्य को अधः पतन का सबसे प्रमुख कारण यही हैं। वह गलती पर हैं, इनके इस प्रकार के कारण ही कम्युनिस्टों तथा नास्तिकों को धर्म तथा ईश्वर के विरुद्ध बोलने का साहस होता है। वैदिक धर्म की शिक्षा पर तो कोई आक्षेप ही नहीं हो सकता वह संसार से उपरत रहने या घृणा की दृष्टि से देखने की शिक्षा नहीं देता। वह

तो यह सिखाता है कि तुम जितनी भी धन सम्पति एकत्र कर सकते हो करो, किन्तु यह सब कार्य धर्मानुकूल होना चाहिये । अधर्म से एकत्रित धन भलाई का नहीं बुराई का कारण होता है । उदाहरणार्थ हम यहां वेद के दो मंत्र देते हैं । स्थालीपुलाक न्याय से यही पर्याप्त होंगे ।—

एन्द्रं सानसिं रयिं सजित्वानं सहासहं वर्षिष्ठमूतये भर ।

ऋ, सू० १८१, म० १,

भावार्थ यह है कि हे इन्द्र परमेश्वर मुझे ऐश्वर्य से भर दो, वह धन दो, जो संसार के विविध कार्यों में काम आता है वह धन कैसा हो (सानसिं) जिसे हम बाँट कर खायें (सजित्वानम्) जिससे अन्दर तथा बाहिर के शत्रुओं को जीतने वाले हों (सहासहं) तपस्वी हों उसे पाकर आलसी न बन जायें (वर्षिष्ठम्) यह धन बहुत दिनों तक टिकने वाला हो और हमारी कमाई का प्रकार भी पवित्र हो । अब इस मंत्र में ईश्वर से स्पष्ट प्रार्थना की गई है कि हमें बहुत सारे ऐश्वर्य से भर दो । यह नहीं मांगा गया है कि हमें जगत से जो अपवित्र तथा निन्दनीय है, छुड़ाओ । इस से स्पष्ट है कि वैदिक धर्म संसार से उपरत रहने की शिक्षा नहीं देता न वह धन सम्पत्ति एकत्रित करने का विरोधी है । हां वह धन सम्पति कैसे एकत्र हो इसके लिये क्या ही उत्तम शिक्षा दी गई है कि जिस की विद्यमानता में साम्यवाद अथवा किसी अन्य वाद की आवश्यकता ही नहीं रहती । वेद कहता है कि वह धन ऐसा न हो जो किसी के काम ही न आये । वह तो ऐसा होना चाहिये जो संसार के विविध कार्यों में बर्ता जा सके, फिर धन कैसा होना चाहिये जिसे हम बाँट कर खायें, धन केवल एकत्रित करने वाले की सम्पति नहीं बन जाता किन्तु यह तो ऐसी वस्तु है जो दूसरों के साथ मिल कर उपभोग करने से ही पूरा लाभ देती है । आज संसार मजदूर तथा पूंजीपतियों में झगड़े क्यों होते हैं और कम्युनिस्टों को मज़दूरों तथा किसानों को उत्तेजित करने का अवसर क्यों मिल जाता है? इसका कारण केवल वेद के इस आदेश का क्रियात्मिक रूप न देना ही है (सानसिम्) हमें सारे धन को बाँट कर खाना चाहिये । एक पूंजीपति अपना रुपया लगाकर एक कारखाना खोलता है उसमें सैंकड़ों मजदूर कार्य करके वस्तुएं तैय्यार करते हैं, जिन से हजारों लाखों की आय होती है । यदि विचार करके देखा जाय तो रुपया पैसा इस आय को पैदा करने का केवल एक कारण है, सबसे बड़ा कारण तो मजदूरों की योग्यता तथा श्रम ही है । किन्तु पूंजी-

पति केवल धन लगाने के कारण यह समझता है कि वह रुपया में १४ आने का हकदार या भागी है और गरीब मज़दूर के पल्ले केवल दो आने ही डालना चाहता है। यही झगड़े का प्रमुख कारण है यदि पूंजीपति वेद के इस आदेश का अनुकरण करें और कारखाने की सारी आय को स्वयं हड़प करने के स्थान पर सब में बाँट कर खायें। प्रत्येक को उसकी योग्यता तथा श्रम के अनुसार भाग दें तो मज़दूरों तथा कारखानों के सारे झगड़े एक क्षण में समाप्त हो जायें। साम्यवादी केवल इसी कारण पूंजीपतियों का विरोध करते तथा मज़दूरों को उनके विरुद्ध भड़काया करते हैं। यदि पूंजीपति वेद के इस आदेश का सच्चे हृदय से अनुकरण करें तो कोई झगड़ा टण्टा उत्पन्न ही न हो। हमारा शारीरिक गठन भी उस के लिए एक उत्तम उदाहरण है। जो हम खाते हैं वह आमाशय में जाता है और वहाँ से रक्त बन कर शरीर में सब अंगों को उनका भाग प्राप्त होता है। यदि आमाशय स्वार्थवश सब खुराक अपने पास ही रख ले और शेष अंगों को भाग देने से मनाही कर दे तो उसका परिणाम यह होगा मनुष्य अजीर्ण रोग से रोगी होकर जान से ही हाथ धो बैठेगा। गिरधर कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है :—

पानी बाढ़ियो नाव में घरमें बाढ़ियो दाम,
दोनों हाथ उलीचिये, यही स्यानो काम।

यदि नाव में पानी भर जाय और घर में रुपया पैसा अधिक हो जाये तो बचने का केवल एक ही साधन है कि दोनों से उठा उठा कर बाहिर फैंके। पानी जोहड़ या तालाब में भी रहता है और दरिया में भी, किन्तु जोहड़ और तालाब अपना जल किसी को नहीं देते अतः कुछ दिनों बाद वह सड़ने लगता है और म्यूनिसिपल कमेटी वाले बाहिर निकालने और जोहड़ तथा तालाब को खुश्क करने का प्रबन्ध करने लग जाते हैं किन्तु दरिया में जितना जल आता है वह उसे उतना ही आगे चला देता है और एक बूंद भी अपने पास टिकने नहीं देता। परिणाम यह होता है कि वह कभी भी खाली नहीं होता और हर समय जल रूपी सम्पत्ति से पूर्ण रहता है और वह जल भी शुद्ध और पवित्र रहने के कारण प्राणिमात्र के लिए सुखदायक सिद्ध होता है वह धन कैसा होना चाहिए। (सजित्वानं) जिससे हम अपने आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें। राजनैतिक तथा आध्यात्मिक शत्रुओं को पराजय

करने के लिये धन तथा सम्पत्ति की आवश्यकता होती है। आर्यकुल प्रदीप महाराणा प्रताप जब अकबर के विरुद्ध लड़ते-लड़ते घन धान्य से खाली हो बैठे और उनके पास सेना को भरती करने तथा अन्य आवश्यक कार्यों के लिये रुपया पैसा न रहा तो उस समय वैदिक धर्म के इस आदेशानुसार ही भामाशाह ने अपना तथा अपने पूर्वजों द्वारा एकत्रित सारा धन महाराणा के चरणों में ला कर रख दिया। यह है धन सम्पत्ति का ठीक प्रयोग और वेद इसी की आज्ञा देता है। पुनः वह धन कैसा होना चाहिए (सहासहं) जो हमें तपस्वी बनाने वाला हो। आजकल के धनिकों की भाँति हम धन पाकर आलसी न बन जायें कि अपने हाथ से पानी का गिलास पीना भी अपनी हतक समझें। किन्तु यह धन हमें साहसी और श्रमी बनाने वाला हो। भारतीयों विशेषतया हिन्दुओं में सबसे बड़ा रोग यही है कि जब किसी के पास चार पैसे इकठ्टे हो जाते हैं तो वह अपने आपको किसी और सृष्टि का वासी समझने लग जाता है। हमें याद है कि एक बार श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने आर्य समाज बच्छोवाली लाहौर के मन्दिर में उपदेश देते हुए प्रसंग वंश कहा था कि बादशाही मसजिद के मीनार पर खड़े हुए व्यक्ति को नीचे पृथ्वी पर चलने वाले मनुष्य नहीं दीखते किन्तु वह उन्हें भेड़ बकरी समझने लग जाता है किन्तु यदि विचार से देखा जाय तो पृथ्वी पर चलने वाले भी उस व्यक्ति को मनुष्य नहीं समझते किन्तु वह उन्हें कौवा दीखने लगता। जो लोग धन दौलत पाकर ऐंठ जाते हैं वे हर प्रकार से हानि में रहते हैं। धन सम्पत्ति पाकर मनुष्य को नम्र बन कर अधिक से अधिक सेवा करने के योग्य होना चाहिये। पुरुषार्थी व श्रमी बनते हुए किसी भी काम के करने में हतक न समझनी चाहिये। कार्य कोई भी बुरा नहीं होता, केवल उसका प्रकार भला या बुरा होता। हमारे एक मित्र जब विलायत से विद्या प्राप्त कर भारत में लौटे तो उन्होंने एक दिन अत्यन्त मनोहर तथा शिक्षाप्रद स्वयं बीती सुनाई। उन्होंने कहा कि वह एक दिन लन्दन के बाजार में भ्रमण कर रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक नवयुवक बूट पालिश का काम करता था। उन्होंने भी उसे अपना बूट पालिश करने के लिये दे दिया। उसने जब बूट पालिश करके वापिस दिया तो महाशय जी ने उसमें न्यूनताए निकालनी प्रारम्भ कर दीं, देखो यहाँ पालिश कम लगा है, यहाँ भली भाँति चमकाया नहीं गया इत्यादि-इत्यादि। इस पर बूट पालिश करने वाले नवयुवक ने

ग्रत्यन्त नरमी से बूट पालिश की डिबिया तथा ब्रुश उसके सन्मुख रखते हुए कहा कि साहब मैं तो इससे ग्रच्छा पालिश नहीं कर सकता हाँ यदि ग्राप इससे ग्रच्छा कर सकते हों तो प्रसन्नता की बात है, यह लीजिये डिबिया ग्रौर ब्रुश, ग्राप यत्न कर देखें। मैं भी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर लूंगा। यह साहिब कहने लगे कि ऐसा सुनकर मेरे क्रोध की सीमा न रही। भारतीय वातावरण में पले हुए नौजवान की यह धृष्टता कि वह उसे डिबिया तथा ब्रुश देकर बूट पालिश करने को कहे। इनके क्रोध का पारा सीमा पार करके खौलाव के दर्ज तक पहुँच गया ग्रौर यह कड़क कर बोले जानते नहीं हो मैं एम० ए० पास ग्रेजूएट हूँ, ग्रौर तुम्हें मुझे बूट पालिश करने के लिये कहते हुए लज्जा नहीं ग्राती। नवयुवक ने कहा, साहिब इसमें लज्जा की क्या बात है। एक ग्रेजुएट के लिये बूट पालिश करने में शरम कैसी, यह कोई चोरी चारी ठगी तो है नहीं, हाथ का परिश्रम है। मेहनत तथा परिश्रम कभी लज्जास्पद नहीं होते शेष रही यह बात कि ग्राप एम० ए० पास ग्रेजुएट हैं। नौजवान ने चुपके से ग्रपनी जेब में से प्रमाण पत्र निकला ग्रौर मेरे सम्मुख रखते हुए बोला देखिये साहब, मैं डब्बल एम० ए० हूँ किन्तु मेहनत मजदूरी से जी नहीं चुराता। बूट पालिश करके कुछ पैसे कमाऊंगा ग्रौर यूनिवर्सिटी की फीस दूंगा। मुझे तो इसमें कोई लज्जा ग्रनुभव नहीं होती, मेरे यह मित्र कहने लगे कि इस नौजवान की यह झाड़ तथा डब्बल एम० ए० के प्रमाण पत्र को देखकर मेरी सिटीपिटी गुम हो गई ग्रौर मुझे यह शिक्षा मिल गई कि कार्य कोई भी घटिया नहीं होता, हम Dignity of Labour श्रम की महिमा को नहीं जानते। मैंने उस नवयुवक से क्षमा माँगी ग्रौर उसके पैसे देकर बूट ले लिया। वेद कहता है कि तुम धन सम्पत्ति तो एकत्रित करो किन्तु वह तुम्हें ग्रालसी तथा गर्वीला बनाने वाली न हो किन्तु साहसी तथा श्रमी बनाने वाली होनी चाहिये। हम सम्पत्ति इकट्ठी करने का केवल एक ही साधन समझते हैं ग्रौर वह ग्राहकों की ग्राँखों में धूल झोंक कर उन्हें लूटना है। हमारे कार्यव्यवहार सम्बन्धी ग्राचारण इतने दूषित हैं कि ग्रन्य स्वतन्त्र तथा सभ्य जातियों के मुकाबले में उसका विचार करते लज्जा ग्रनुभव होने लगती है। हमारे एक मित्र ने बताया कि उन्होंने विलायत से चार सौ रुपये की पुस्तकें मंगाई थीं, जब पुस्तकों का पार्सल ग्राए कई दिन बीत गये तो एक दिन उन्हें एक पौंड तथा कुछ शिलिंग का कैश ग्रार्डर मिला इसके साथ एक पत्र भी था

जिसमें लिखा था कि कुछ पुस्तकों के किन्हीं पृष्ठों पर दाग धब्बे लगे हुए हैं इसलिए हमने आपको यह डिस्कौंट (रियायत) दे दी है। मेरे मित्र कहने लगे, मैंने अभी पुस्तकों को भली भाँति देखा भी न था कि मेरे बिना मांगे पुस्तक विक्रेता कम्पनी ने अपने आप यह कैश आर्डर भेज दिया। यह है कार्य व्यवहार सम्बन्धी आचार। मेरे मित्र ने सब पुस्तकों को बड़ी सावधानी से पन्ने उलट पुलट कर देखा, केवल कुछ पन्नों पर कुछ साधारण से धब्बे दृष्टिगत हुए। किन्तु इसके मुकाबले में हमारा कार्य व्यवहार का आचरण कैसा है इसका विवरण भी हम स्वयं बीती द्वारा देना चाहते हैं। मुद्दत हुई हमें एक सम्बन्धी के साथ जयपुर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारे भाई एक धनिक मनुष्य थे, उन्होंने बाजार से पत्थर के बने खिलौने मूर्तियां तथा टी सैट Tea seats मोल लेना चाहे। बाजार में भ्रमण करते हुए जब हम एक दुकान पर पहुँचे तो दुकानदार ने हमें देखते ही अपने नौकरों से कहना आरम्भ कर दिया, देखते नहीं यह साहब पंजाब से आये हैं हमारे मेहमान हैं, हमारा कर्त्तव्य है कि इनकी सेवा करें। सौदा लेना या न लेना पृथक् बात है, जाओ इनके लिये मिठाई तथा सोडावाटर की बोतलें लाओ। हम बहुतेरा मना ही करते रहे, किन्तु उन्होंने हमारी एक न मानी, और क्षणभर में हमारे सामने तिपाइयाँ रख दी गईं और तश्तरियों में धरी हुई कुछ मिठाई और सोडा की बोतलें आ गईं। ख़ैर जूं तूं करके हमने उसमें से कुछ खाया, लेकिन सच्ची बात यह है कि हम उसकी अतिथि सेवा के बोझ तले दबे जाते थे। अन्त में हमारे भाई ने उस दुकानदार से कहा कि हमने तो कुछ बतन तथा मूर्तियाँ जो जयपुर में पत्थर से तैय्यार की जाती हैं, और जो जगत् विख्यात हैं, मोल लेना चाहते हैं। दुकानदार ने कहा यह दुकान ही आपकी है जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता हो प्रस्तुत कर दी जायगी। हमारे भाई जी ने लगभग चार सौ का सामान उस दुकान से मोल लिया। जब नौकर यह सामान दुकान के अन्दर बाँध रहे थे तो हमने भाई जी से कहा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं अन्दर जाकर अपनी देखरेख में सब सामान बंधवालूं। इस पर वह बोले नहीं ऐसी अविश्वास की क्या बात है। देखते नहीं अपरिचित होते हुए भी हमारा कैसा अतिथि सत्कार किया है। क्या हमें उन पर अविश्वास करना शोभा देता है? खैर जब सामान बंध बंधवा कर आ गया और हम वापिस अपने घर पहुंचे और अपना सामान खोल कर देखा तो

उसमें चाय पीने के कुछ बरतन टूटे हुए पाये गये, यानी दुकानदार ने जो खिलाया पिलाया था, उसकी सब कमी हम से ही पूरी कर ली । यह है हमारा व्यावहारिक सदाचार । यही कारण है कि हम किसी भी काम में सफल नहीं होते । हम मेहनत तथा श्रम के स्थान पर चालाकी से काम लेना ही धन कमाने का सबसे बड़ा साधन समझते हैं, यदि आप किसी दुकान पर जाकर वहाँ का दृश्य देखें तो आप आश्चर्य करने लगेंगे कि लोग न अपने समय की कोई कीमत समझते हैं न दूसरे के समय की । व्यर्थ सौदा बाजी में ही बहुत सा समय खो देते हैं । कहा जाता है कि इंगलिस्तान की मलका एलिजबिथ जब मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई थी तो उसने अपने डाक्टरों से कहा कि यदि तुम में से मुझे कोई पाँच मिनट और जीवित रख सके तो मैं उसे बरतानिया के राज्य का आधा भाग देने को तैय्यार हूं, क्योंकि मेरे एक परम स्नेही मित्र की ट्रेन के पहुँचने में पाँच मिनट शेष हैं, अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं केवल एक आध क्षण की मेहमान हूँ । देखिये महारानी एलिजबिथ पाँच क्षण की कीमत आधा राज्य डालती थीं । किन्तु यहाँ किसी लाला से पूछो; क्यों जी कैसे गुजरती है ? तो यही उत्तर देता कि कुछ नहीं दिन कटी हो रही है । कितनी अद्भुत बात है कि स्वतन्त्र तथा सभ्य देशों के लोग तो पाँच मिण्टों की कीमत करोड़ों रुपये डालें और यहां हमारे लिये समय वितान इतना कठिन हो रहा है कि हम कैंची लेकर इसको काटते हैं किन्तु यह कटने में नहीं आता ।

हमारी दुकानों का दृश्य

किसी दुकान पर आप जाकर देखें तो यही दृश्य दृष्टिगोचर होगा कि एक ग्राहक बजाज की दुकान पर आता है और कहता है कि मुझे अमुक कपड़ा चाहिये । बजाज थान पर थान निकाल कर दिखाता है किन्तु ग्राहक को कोई पसन्द नहीं आता बीसियों थान निकलवा और खुलवा कर देखने के बाद एक पसन्द आया । अब इसके मोल के सम्बन्ध में सौदाबाजी प्रारम्भ हुई । दुकानदार कहता है कि हमने बेचा तो पन्द्रह आने गज है किन्तु आपसे तेरह आना गज ही ले लेंगे बजाज महोदय से ग्राहक की न पूर्व परिचित है, न ही कभी लेन देन हुआ है किन्तु वह उसको अकारण ही दो आने गज कम पर देने को उद्यत हो रहा है । ग्राहक भी इस चालाकी को खूब जानता है इसलिए वह तुरन्त बोल उठा कि वाह साहब तो खूब रही । मेरा एक साथी बिल्कुल

यही कपड़ा दूसरी दुकान से आठ आने गज के भाव पर लाया है। सारांश यह कि घण्टा भर मगजपच्ची के पश्चात् दस आने पर फैसला हुआ और बजाज ने पूछा कि फरमाइये कितना फाड़ दूं। इस पर ग्राहक महोदय बड़ी लापरवाही से कहते हैं कि बस केवल दो गिरह उतार दीजिए। मैंने हुक्के की नड़ी पर लपेटना है। देखिये विचारे बजाज के बीसियों थान खुलवाये जिनके इकट्ठा करने पर बिचारे का पर्याप्त समय लगेगा। भाव करते हुए कितना समय नष्ट किया गया किन्तु आवश्यकता थी केवल दो गिरह कपड़ा की और वह भी केवल हुक्के की नड़ी पर लपेटने के लिए। यह है हमारे समय की कीमत और यह है हमारे लेनदेन सम्बन्धी आचार का नमूना। वेद कहता है कि तुम्हारा धन ऐसा होना चाहिये जो तुम्हें साहसी बनाये। छल कपट से अधिक समय कार्य न चलेगा। हमारे एक मित्र ने बतलाया कि वह एक दुकान से सौदा मोल लेने गए, जब भाव के सम्बन्ध में झगड़ा हो रहा था तो दुकानदार झट बोल उठा कि महाराज हम तो अधिक लेना हराम समझते हैं हमारा तो सिद्धान्त ही यह है कि जो अधिक ले, वह गौ खाये। हमारे मित्र कहने लगे जब हमने यह बात सुनी तो हमारा शरीर कांप उठा और हमें अपने आपको शर्म आने लगी और हमने दुकानदार के बतलाए भाव पर वह वस्तु मोल ले ली किन्तु घर पर आकर ज्ञात हुआ कि हम तो ठगे गये हैं। दुकानदार ने यह भी ठगने का एक ढंग निकाल रखा था, उसका तात्पर्य केवल इतना होता था कि जो मैं अधिक लूंगा वह गौ खायेगी मैं नहीं खाऊंगा। उसने घर में गौ पाल रखी थी और ग्राहकों को यही कह कर ठगा करता था किन्तु यह हेराफेरी अधिक दिन नहीं चल सकती। अतः हमें अपने कार्य व्यवहार सम्बन्धी आचरण को ठीक करना चाहिये। आप विलायती दुकानों पर जाकर देखें हर वस्तु का मोल उस पर अंकित है, सौदा बाज़ी तथा झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं। यदि आपको इस मोल पर वह वस्तु जंचे तो ले लें नहीं तो दूसरी दूकान खोजें। न अपना समय नष्ट हुआ न दूसरों का। चौथी बात तो इस मंत्र में कही गई है कि हमारा धन "वर्षिष्ठम्" अर्थात टिकाऊ हो और हमारी आय का प्रकार पवित्र हो। साधारणतः कहा जाता है कि धन तीन पुश्त से अधिक नहीं टिकता। कारण यह कि तीन पीढ़ियों में कोई न कोई ऐसा निकल ही आता है जो धन सम्पत्ति का नाश करने पर उतारू हो जाय। उसने स्वयं तो परिश्रम द्वारा कमाया नहीं होता, केवल उसे पैतृक

सम्पत्ति के रूप में मिला होता है, इसी कारण वह उसे अल्प समय में ही नष्ट करके दरिद्र बन बैठता है। वेद यह कहता है कि तुम्हारा यह धन हिम्मत तथा श्रम से कमाया होना चाहिए ताकि यह बहुत दिनों तक स्थिर रहे और यह तभी होगा जब कि हमारा धनोपार्जन का प्रकार शुभ तथा पवित्र हो। पाप से कमाया धन तो पहले खूब फलता फूलता है किन्तु पश्चात जड़ मूल सहित नष्ट हो जाता है। मनु जी महाराज ने अपने धर्म शास्त्र में यही बात लिखी है। आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी और उच्च कोटि के विद्वान श्री स्वामी दर्शनानन्द जी एक कथा सुनाया करते थे कि एक दुकानदार ने एक दूध की दूकान खोली। वह विशुद्ध दूध बेचता और उससे जो आय होती उससे अपना तथा अपने परिवार का निर्वाह करता। अन्त में कुछ दिनों के पश्चात् उसकी कन्या जब सियानी हो गई तो उस के विवाह की चिन्ता हुई। किन्तु सब से अधिक चिन्ता इस वात की हुई की घर में तो पैसा पाई नहीं, विवाह करूं तो कैसे ? अन्ततः उसने अ।प दूसरा साधन न पाकर दूध में पानी मिलाना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वह दिनों में अमीर हो गया। घोड़े गौएं उसके द्वार बंधे दृष्टि गोचर होने लगे। कई कोठियाँ बन गईं नौकर चाकर हरदम सेवार्थ उपस्थित रहने लगे, बेटे पोतों से घर में खूब धमाचौकड़ी बनी रहती। तात्पर्य यह कि दूध में पानी मिलाने वाला आदमी हर प्रकार से सुखी दीखने लगा। उसका एक पड़ोसी था जो खुद भी दूध की दुकान करता था, किन्तु बड़ी नेक नीयती से, कभी दूध में पानी की एक बूंद भी न मिलाता, बिशुद्ध दूध बेचता पर बेचता अपने भाव पर जो कि बाज़ार की अपेक्षा कुछ अधिक होता। उसका परिणाम यह था कि उसकी आर्थिक स्थिति सदैव असंतोष जनक रहती। यह देख कर एक दिन उसने अपने गुरु महात्मा से कहा कि महाराज आप तो यह उपदेश दिया करते हैं कि धर्म वह है जिससे निःश्रेयस की सिद्धी हो, धन सम्पत्ति बढ़े किन्तु देखिये यह हमारा पडोसी, जब तक धर्म-धर्म पुकारता रहा और उसके अनुसार आचरण करता रहा, सदैव मेरी भाँति ही दुखी रहता था और कहा करता :—

भोजन को संशो पड़ो धन की कैसी आस ?

किन्तु कन्या का विवाह निकट आने पर इस ने ईमानदारी छोड़ दी और दूध में जल भगवान ठेलना आरम्भ कर दिया, परिणाम सम्मुख है आज लाखों में खेलता है धन धान्य से खूब भरपूर है पुत्र पांच, धन सम्पत्ति भगवान का

या अधर्म का दिया सब कुछ विद्यमान है। एक हम हैं कि आपके उपदेशानुसार जीवन व्यतीत करते तथा पाप की कमाई से बचते वर्षों बीत गए किन्तु दो काल पेट भर भोजन भी नसीब नहीं हुआ, धन सम्पत्ति तो एक ओर रही। महात्मा ने कहा कि अच्छा भाई तुम हमारे सामने एक गहरा गढ़ा खोदो जो तुम्हारी ऊंचाई के तुल्य हो। उसने देखते ही गढ़ा खोद दिया महात्मा ने कहा तुम्हारे विचार में तेरे पड़ोसी दुकानदार ने दूध में कितना पानी मिलाया होगा, तू उतना पानी गड़े में डाल दे और खुद उसमें उतर जा। जब वह पानी डालने के पश्चात गढ़े में घुसा तो सब ने देखा पानी उसकी गरदन तक आता था महात्मा ने कहा कि भाई अभी पाप कर्म के परिपक्व होने में कसर है, कुछ दिन और प्रतीक्षा करो। सारांश यह कि परमात्मा का करना ऐसा हुआ कि इधर यह गढ़ा पानी से पूर्ण भरा और उधर ऐसा रोग फैला कि उसके घोड़े गौएं आदि सब पशु मर गए।

कुछ दिन पश्चात उसी नगर में हैजा की बिमारी फूट पड़ी जिससे बारी-बारी बेटे पोते, स्त्री, पुत्र, बधुएं मृत्यु का ग्रास बन गईं। किसी ने सच कहा कि विपत्ति अकेली नहीं आती, अभी उन विपत्तियों से छुटकारा भी न हुआ था कि अकस्मात् उसके घर आग लग गई और जितनी भी गृह सम्पत्ति या घर गृहस्थी का सामान था, सब जल कर राख की ढेरी हो गया। कुछ बैंकों का दिवाला निकल जाने के कारण, उस का जो धन उन में पड़ा था, उस से भी उसे हाथ धोने पड़े, यह देख कर महात्मा ने धर्मपरायण दुकानदार ने कहा कि क्यों देटा, अब सत्य बताओ पाप की कमाई अच्छी है या धर्म की ? मनु महाराज ने सर्वथा सत्य लिखा है कि पापी प्रथम तो भली प्रकार फलता फ़ूलता है और एक फलयुक्त तथा छायायुक्त बृक्ष की भांति उस की शाखें दूर-दूर तक फैलती है किन्तु जब उसके कर्मों का गढ़ा भर जाता है तो ऐसी प्रतिकूल वायु चलती है कि वह वृक्ष क्षण भर में जड़ मूल से उखड़ कर धरती पर आ गिरता है, पापी को यदि पहले ही दण्ड मिल जाय तो उसे अधिक कष्ट न होगा, परमात्मा तो उसे कर्मों का फल देना चाहते हैं इसलिये वह फल फूल कर जड़ मूल से नष्ट हो जाता है। अतः वेद ने सत्य ही कहा है कि तुम्हारी आय का प्रकार पवित्र होना चाहिये। हराम का माल हराम की राह जाता है यह लोकोक्ति सर्वथा सत्य है। यदि हमारी आय सत्य तथा अहिंसा द्वारा प्राप्त हो तो वेद के आदेश अनुसार हमारा धन देर तक

टिकाऊ होगा। लोग कहते हैं, अजी क्या करें, यदि असत्य न बोलें तो कार्य कैसे चले ? दुकानदारी में झूठ बोलना ही पड़ता है, यह सर्वथा असत्य है। संसार में सत्य की ही पूजा होती है, असत्य की नहीं। जहाँ कोई असत्य सफल होता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है वहां पर सच्चाई का ओढ़ना ओढ़कर ही, निरे असत्य को कोई नहीं पूछता। सत्यता के व्यवहार से विश्वास उत्पन्न होता है। यदि संसार से विश्वास उठ जाय तो कोई कार्य भी न हो सके। मज़दूर लोग कारखानों में ख़ून पसीना एक करके कार्य करते हैं तो केवल इस विश्वास पर कि मास समाप्त होने ही वेतन मिल जायगा। दुकानदार जो ग्राहक को सौदा दे देते हैं तो इसी विश्वास पर की वह उस का पूरा मूल्य दे देगा। यदि वह विश्वास न हो तो न कोई सौदा दे और न कोई ले। मां बच्चे की जान से सेवा करती है, आप गीले पर सोती तथा उसे सूखे में सुलाती है, किस भरोसे पर ? केवल इसी आशा पर कि वह बड़ा होकर उस की सेवा करेगा यदि माता को ऐसा विश्वास न हो तो संसार में बच्चों की पालना ही असंभव हो जाय: अतः संसार में सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। असत्य को सफल बनाने के लिए भी सत्य का ही ओढ़ना ओढ़ाना पड़ता है, उस के लिये सैकड़ों प्रकार के पापड़ बेलने पड़ते हैं, ताकि हमारा असत्य भी दूसरे को सत्य प्रतीत होने लगे, तभी तो वह हमारी बात मानेगा नहीं तो साफ जबाब दे देगा। वेद ने सत्य ही कहा है कि तुम्हारी आय का प्रकार पवित्र होना चाहिये। पाप से कमाये धन के लिये तो हथकड़ी तक लग जाया करती है तथा लोग कैद तक भोगते हैं। अन्त समय में उन्हें अत्यन्त कष्ट से प्राण देने पड़ते हैं। कहते हैं कि महमूद गज़नवी जिसने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किया और प्रत्येक बार लाखों करोड़ों की सम्पति लूट कर ले गया। हजारों नौजवान लड़के तथा लड़कियों को पकड़ कर साथ ले गया और उन्हें गज़नी के बाज़ारों में दो-दो रुपये में विक्रय किया। कहते हैं कि इस हत्यारे ने लाखों को तलवार के घाट उतार दिया, असंख्य बच्चों को यतीम तथा स्त्रियों को विधवा बना कर जो करोड़ों तथा अरबों की सम्पत्ति हीरे जवाहारात के रूप में एकत्रित की थी, वह मरने लगा तो कहा कि वह सारी धन सम्पत्ति मेरी आँखों के सामने लाओ। कहते हैं कि खचरों पर लाद कर जब यह धन सम्पत्ति उसकी आंखों के सामने से गुजरी जा रही थी तो उस निर्दय की आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित थी और वह

विचारता था कि क्या इसी धन सम्पत्ति के लिए मैंने इतने अत्यचार किये ? किन्तु इस में से एक फूटी कौड़ी भी मेरे साथ नहीं जा रही । जायगा तो केवल वही पापों का बोझा; जो मैंने ईश्वर की सृष्टि को दुख देकर अपनी गरदन पर लिया है । अतः वेद सत्य कहता है कि सावधान ! तुम्हारी आय का प्रकार पवित्र हो, हिंसा तथा असत्य द्वारा कमाया धन टिकाऊ भी नहीं होता, जो मकान तलवार से खड़ा किया जाय, वह नष्ट भी तलवार की धार से ही होता है । देखिए इस एक वेद मंत्र में ही कितनी सुन्दर तथा सारगर्भित शिक्षा दी है, यदि इसका ठीक प्रकार से अनुकरण हो तो संसार में न साम्यवाद की आवश्यता रहती है न कम्युनिज़्म की । क्योंकि जब धन सम्पत्ति को सब एक समान बांट करके उपभोग करेंगे और इसे प्राप्त करके आलसी तथा दरिद्री न होकर साहसी तथा श्रमी बन जायेंगे तो यह धन चिरकाल तक टिकाऊ होगा । हां, हमें इस बात में सावधान होना होगा कि इसके प्राप्त करने का ढंग पवित्र हो, इसे सत्य और अहिंसा के नियमानुसार एकत्र करें न कि हिंसा का असत्य द्वारा । यह तो हमने ऋग्वेद का मंत्र दिया था, अब यजर्वेद २३—३ का मंत्र अवलोलन कीजिये । इस मंत्र का देवता ईश्वर है और इस में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे बृहस्पते ब्रह्माण्ड पते ! वेद विद्या से प्रसिद्ध जगदीश्वर! आप कृपा करके हमें जन्म जन्मांतरों में उस धन से धनवान कीजिये, जो ज्ञान विज्ञान से विचित्र रूप वाला हो और जो बल की रक्षा करने वाला, अविद्या अन्धकार का नाशक हो और जिस को प्राप्त होकर धर्म युक्त व्यवहार से अनुष्ठान द्वारा राजा तथा वैश्य धार्मिक पुरुषों में प्रकाशमान होते हैं और जिस धन द्वारा बहुत से यज्ञ किये जाएं तथा संसार का उपकार हो ।

देखिये इस मंत्र में भी भगवान से ऐसे धन की याचना की गई है जिस से संसार का उपकार हो सके । यही बात साम्यवाद तथा कम्युनिज़्म के सारे सिद्धाँतों को समाप्त करने में काफी से भी ज़ियादा है, बस साम्यवादी तथा कम्युनिस्ट जो धर्म के विरुद्ध लट्ठ लिये फिरते हैं वह अन्ध परम्परा पर स्थित मतों के विषय में तो सम्भवतः किसी सीमा तक सत्य हो किन्तु वदिक धर्म के सम्बंध में बिल्कुल नहीं । वैदिक धर्म तो एक सच्चा ईश्वरीय तथा सार्वभौम धर्म है इस के विरुद्ध मुख खोलना कोई सहज कार्य नहीं यदि लोग वैदिक धर्म-अनुसार कार्य न करते हुए दुख उठा रहे हैं तो इस का यह तात्पर्य नहीं कि

वह सिद्धांत ही अशुद्ध है तथा उन्हें मिटा देना चाहिए। मित्रो ! आवश्यकता तो सर्वथा इस से विपरीत बात की है वह यह कि धर्म का अधिक से अधिक प्रचार विस्तार तथा प्रसार किया जाय ताकि दुनियां ठीक मार्ग पर चल कर सुख लाभ करे।

वर्ण व्यवस्था और आश्रम धर्म

बात यह है कि साम्यवाद या कम्युनिज़्म ने इस कारण सर निकाला है कि वैदिक धर्म ने जो ढाँचा तैय्यार करना सिखाया था उसे हम भूल गए हैं और मन माने ढंग पर चल कर कष्ट पाते हैं। वेद में मनुष्यमात्र को चार विभागों में विभक्त किया है और उसकी तुलना भी मनुष्य शरीर से की है, वेद कहता है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्मायां शूद्रोऽजायत् ॥

इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार सब से ऊंचा पद ब्राह्मण को दिया है और इस मंत्र में ब्राह्मण को सिर उपमा दी गई है। मनुष्य शरीर में सिर ही ज्ञान का भण्डार है। सारी ज्ञान इन्द्रियाँ आंख, नाक, कान, जिह्वा आदि सब इसी में हैं। इस लिये कहा गया है कि ब्राह्मण ज्ञान का पुञ्ज होना चाहिए और उसे अपने ज्ञान का विस्तार करना चाहिये। शास्त्रों में ब्राह्मण के छः कर्म बतलाये गए हैं। पड़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना दान लेना तथा देना। आज ब्राह्मण का केवल एक ही धर्म रह गया है वह केवल दान का लेना और अवनति का यही सबसे बड़ा कारण है। मनुष्य शरीर में सिर सोचता है और इसी की आज्ञा से सब इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, मनुष्य समाज में भी ब्राह्मण को यही स्थान दिया गया है। धन सम्पति के विषय में उसका त्याग पराकाष्ठा को पहुंचा होना चाहिए। कहा गया है आदर्श ब्राह्मण वह है जिस के घर में भोजनार्थ केवल एक समय की ही सामग्री हो। ऐसे विद्वान् से किसी पक्षपात या लागलपेट की बात की सम्भावना कैसे हो सकती है ? जिसकी आवश्यकताएं केवल एक समय के भोजन तक सीमित हों पुनः कौन सी वस्तु है जो ऐसे त्यागी ब्राह्मण को क्रय कर सकेगा ? बस वैदिक धर्म कहता है कि राष्ट्र निर्माण का कार्य ऐसे महात्मा निर्लोभी तथा तपस्वी ब्राह्मणों के हाथ में होना चाहिये। संसार में साम्यवाद तथा समाजवाद जैसे वाद जो सिर उठा रहे हैं तथा जो खराबी पैदा हो रही है उसका यही कारण है जो धन

की पूजा होती है विद्या और त्याग के कोई नहीं पूछता। जहां लक्ष्मी की पूजा और सरस्वति का तिरस्कार होता है वहां ऐसी ही अवस्था हुआ करती है आज कल अमेरिका तथा इङ्गलिस्तान में सब समाचार पत्रों पर पूंजी-पतियों का अधिकार है इसलिए जनमत की कुंजी उनके हाथ में है वह केवल अपनी धन सम्पति के बलबूते पर जिस भी सरकार को चाहें परिवर्तित करसकते हैं। परिणाम यह है कि सब शक्ति पूंजीपतियों के हाथ में आ गई है और सब गवर्नमैंट इनको प्रसन्न रखना अपना कर्त्तव्य समझती है। यदि इस राष्ट्र निर्माण में वैदिक शिक्षा अनुसार सब से अधिक मान लक्ष्मी के स्थान पर सरस्वति को दिया जाय और ऐसे वीतराग त्यागी तपस्वी महाविद्वान का निर्णय सर्वोपरि हो और उसमें ननुनच की किसी को शक्ति न हो तो बतलाइये संसार का कलह क्लेश क्यों दूर न हो जायगा? महात्मा गाँधी ठीक कहा करते थे Multiplication of wants is the root cause of all troubles. कि आवश्यकताओं को बढ़ाना ही सब विपत्तियों का मूल है। एक आदमी जब देखता है कि जायज़ आमदनी से उसके जीवन की आवश्यकताएं पूर्ण नहीं होतीं तो वह हर आपत्ति-जनक साधन को अपनाने पर उतारू हो जाता है। सब प्रकार की घूस, चोरी, डकैती, ठगी, तथा धोखा फरेब की उत्पति का कारण आवश्यकताओं की वृद्धि ही है, यदि आवश्यकताएं सीमित हों तो हमें उनको पूरा करने के लिए आपत्ति-जनक साधनों का प्रयोग न करना पड़े। त्यागी तपस्वी ब्राह्मण सबसे ऊंचा इसी कारण समझा जाता था कि उसका त्याग पराकाष्ठा तक पहुंचा होता था। कौन सा प्रलोभन है जो ऐसे त्यागी को धर्म तथा सत्य के मार्ग से हटा सके? कोई नहीं। वह तो वही बात कहेगा जो सर्वथा सत्य हो। रही यह बात कि ऐसे मनुष्य आजकल कहां पाए जाते हैं तो इसका उत्तर यह है कि पूर्वकाल में तो अनेक ब्राह्मण इसी त्यागमय वाले हो चुके हैं और वर्तमान काल में गांधी का उदाहरण हमारे सम्मुख है, जिन्हें कोई भी वस्तु सच्चाई तथा न्याय मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी। उनके त्याग की तो यह दशा थी कि वह इतना ही कपड़ा पहनते थे कि जितना भारत के निर्धन से निर्धन मनुष्य को प्राप्त हो सके, वह बकरी का दूध पीते तथा सादा से सादा अत्यन्त साधारण भोजन खाते थे संसार ने देखा कि उनका घोर विरोधी भी उनकी ईमानदारी सत्य भावना पर कोई उंगली नहीं उठा सका। वह

संसार में एक नेक और सच्चे ब्राह्मण का ऐसा उदाहरण स्थापित कर गये हैं कि जिनके समान संसार में शायद ही कोई मिल सके, और भूतकाल मे अनेकों ही ब्राह्मण हो चुके हैं, जिनमें से हम केवल उदाहरणार्थ एक का नाम प्रस्तुत करते हैं। और वह है भी जम्मू तथा काश्मीर का। काश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा के समय की बात है कि उनकी रियासत में एक उच्च कोटि का व्याकरण विद्वान कैय्यट नामक रहा करता था। एक दिन महाराज साहिब भ्रमण से निवृत्त होकर महल को वापिस आ रहे थे कि मार्ग में किसी मंत्री ने कहा कि महाराज कि आपकी रियासत में एक उच्च कोटि का ब्राह्मण है सम्भवत: आपने उस के दर्शन नहीं किए। महाराज ने पूछा कि वह कहाँ रहते हैं। मंत्री ने कहा कि वह स्थान समीप ही है। महाराज तत्काल उनके दर्शन करने को उद्यत हो गए। जब वह राज्य प्रबन्धकों सहित पण्डित जी की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज आप जैसा अद्वितीय ब्राह्मण मेरे राज्य में रहता हो, और मुझे आपकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त न हो, इस से बढ़ कर दुर्भाग्य की बात और क्या हो हो सकती है। कैय्यट पण्डित ने कहा राजन् हम आप के राज्य में हर प्रकार से आनन्द में रहते हैं, हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। जब महाराज ने बहुत आग्रह किया कि कोई तो सेवा बतलाएं ताकि मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकूं तो ब्राह्मण देवता ने कहा कि घर गृहस्थी का विभाग हमारी पडितानी के हाथ में है, आप उनसे पता लीजिये यदि उन्हें किसी वस्तु की आकश्यकता होगी तो वह कह देंगी। महाराज वहां से चलकर पंडितानी की सेवा में उपस्थित हुए और हाथ बाँधकर प्रार्थना की कि देवी जी! कोई सेवा बतलायें। पंडितानी जी ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया कि राजन् प्रथम तो मुझे इस समय किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, यदि कभी आवश्यकता होगी भी तो अपने पति देव से ही मांगूंगी जो मेरा पाणिग्रहण करके मेरा हर प्रकार का भार अपने ऊपर ले चुके हैं। फिर मैं आपके सामने हाथ पसार कर मांगना उचित नहीं जानती। दूसरी बात यह है कि जिस स्त्री को कैय्यट पंडित जैसा जगविख्यात पति प्राप्त हो फिर भी यदि वह द्वार-द्वार मांगती फिरे तो दुनिया में उससे बढ़ कर अभागिनी कौन होगी? पंडितानी जी के दरबार से निराश होकर महाराजा साहिब फिर पंडित कैय्यट की सेवा में उपस्थित हुए और कहने लगे, महाराज वहाँ तो सफलता नहीं हुई,

आप ही कृपा करें तो मेरे मन की प्रसन्नता हो सकती है। यह सुन कर पं० कैय्यट ने अपनी पोथी के पत्रे उठाए और कहने लगे कि अच्छा राजन् यदि हमारे आपकी रियासत में रहने से कष्ट होता है तो लो हम किसी और जगह जाकर डेरा लगा लेते हैं। देखिए एक ओर लंगोटबन्ध त्यागी ब्राह्मण है दूसरी ओर जम्मू, कशमीर जैसी शक्तिशाली धन धान्य से भरपूर रियासत का मालिक है। किन्तु उसके कोष में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे वह एक साधारण गृहस्थी ब्राह्मण को खुश कर सके ? यह है त्याग और तपस्या की पराकाष्ठा। ऐसे ब्राह्मण कौन खरीद सकता है और कैसे। वेद कहता है ऐसे ब्राह्मण ही हमारे शहर में सबसे ऊंचे पद पर होने चाहिएं। जिसके किये धरे पर किसी ननुनच करने का साहस न हो।

क्षत्रिय

राष्ट्र के अन्दर दूसरा दर्जा क्षत्रिय का है। क्षत्रिय शब्द दो शब्दों से बना है यानी क्षत और त्र। जिसके अर्थ है क्षत् यानी घायल की रक्षा करना। आजकल के कबूतर, घुग्घी और बटेरे मारने वालों को क्षत्रिय नहीं कहते। जो लोग, निर्दोष, निहत्थे कमजोर और गरीब जानवरों पर जुल्म करते हैं और उन्हें मौत के घाट उतारते हैं वह बहादुर नहीं कहला सकते। वीरता जान लेने में नहीं बल्कि जान देने में है। यदि निहत्थों, कमजोरों, निर्दोषों को मारना ही वीरता होती तो सेना विभाग में कसाइयों के सिवाए और किसी को भर्ती न किया जाता। किन्तु आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि सेना विभाग में कसाइयों और बूचड़ों को बिल्कुल भर्ती नहीं किया जाता। इंग्लिस्तान में कोई कसाई ज्यूरी (Jury) का मैम्बर नहीं बन सकता। अतः क्षत्रिय वह होता है जो अपनी जान हथेली पर रखे हुए तीनों वर्णों की रक्षा करता है और इसे ही अपना जीवनोद्देश्य समझता है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता और पुत्र का होता है। वह न्याय पथ से विचलित होकर प्रजा के गरीब से गरीब मनुष्य पर भी अत्याचार नहीं कर सकता। उदाहरणतया कश्मीर के ही राजा अवन्ति वर्मा के जीवन की एक घटना प्रस्तुत करते हैं। इससे सिद्ध हो जाएगा कि हमारे राष्ट्र में राजा (क्षत्रिय) का दर्जा क्या है और वह कैसा होना चाहिये ? यदि ऐसे ही राजा संसार में हो जाएं तो बताइए फिर साम्यवाद या कम्यूनिज्म की क्या आवश्यकता रह जाए। कहते हैं कि एक समय महाराजा अवन्ति वर्मा ने अपने लिये एक सुन्दर महल

बनवाया। उसके लिये जो सड़क तैयार की जा रही थी उसके रास्ते में एक धीवर का मकान पड़ता था। राजा साहिब के मुख्य मन्त्री उसकी सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि महाराज साहिब को आपके मकान की आवश्यकता है। आप जो भी इसका मूल्य माँगेंगे, आपको दे दिया जायगा। आप यह मकान दे दें। धीवर ने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि मैं तो मकान नहीं देता। मुख्य मन्त्री ने यहाँ तक कहा कि मकान के नीचे जिस कदर भी भूमि आती है, उससे दस गुणा भूमि आप जहाँ कहें आपको दे दी जायगी। आप मकान दे दें। परन्तु धीवर किसी प्रकार भी प्रसन्न न हुआ। होते-होते यह बात अवन्ति वर्मा के कानों तक जा पहुंची। जिस पर महाराजा साहिब स्वयं उस धीवर के पास गए और कहा कि तुम स्वयं बताओ कि तुम किसी तरह यह मकान दे भी सकते हो ? धीवर ने कहा हां एक उपाय है। "महाराज ने कहा, वह कौन सा"। धीवर ने उत्तर दिया कि आप नंगे पांव मेरे मकान पर आएं और गले में आंचल डाल मुझसे भिक्षा मांगे और प्रार्थना करें कि हे धीवर महाराज ! हमें प्रासाद की सड़क बनाने के लिए आपके मकान की आवश्यकता है, वह दे दें। तो मैं यह मकान मुफ्त आपकी सेवा में भेंट कर दूँगा। यह सुन कर महाराजा साहिब चकित रह गए। पर जिस प्रकार धीवर ने कहा, महाराजा ने उसी प्रकार प्रार्थना की तो धीवर ने वह मकान दे दिया। यह सब कुछ हो चुकने के बाद महाराजा साहिब ने धीवर से पूछा "कि भाई, तुम्हें मकान का मुँह मांगा मोल दिया था, मकान के नीचे जितनी भूमि थी, उससे दस गुणा भूमि जहां चाहते, मिल सकती थी, पर तुमने इन सब वस्तुओं पर लात मार कर केवल हमें ही नीचा दिखाने में अपनी आत्मा की सन्तुष्टि समझी। यह बात हमारी समझ में नहीं आई। धीवर ने उत्तर दिया, 'महाराज' यह बात नहीं' मैं तो आपका मस्तक ऊंचा करना चाहता था और आपके इस कर्म से संसार में एक उदाहरण स्थिर करना चाहता था कि हमारे देश के राजा ऐसे प्रजाप्रिय और न्यायशील थे कि वह साधारण से साधारण धीवर के मकान को भी अन्यायपूर्वक अपनी शक्ति से प्राप्त करना पाप समझते थे। उसके लिये धीवर के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने में अपना अपमान नहीं समझते थे। बस वैदिक धर्म इस प्रकार के क्षत्रिय संसार में उत्पन्न करना चाहता है।

वैश्य

वेद के अनुसार हमारे राष्ट्र में तीसरा दर्जा वैश्य का है। उसका कर्तव्य यह है कि वाणिज्य-व्यापार, खेती-बाड़ी द्वारा जैसे भी धन-सम्पत्ति एकत्र कर सके, करे। लेकिन इस धन से केवल स्वयं ही लाभ न उठाए प्रत्युत तीनों वर्णों की सेवा में व्यय करना अपना कर्तव्य समझे। भामाशाह ने अपनी और अपने पुरुषाओं की एकत्र की हुई धन-सम्पत्ति महाराणा प्रताप की सेवा में उपस्थित करके इसी उच्च आदर्श का पालन किया था।

शूद्र

चौथा दर्जा शूद्र का है। शूद्र वह है जिसे प्रयत्न करने पर भी पढ़ना-लिखना न आए। उसका कर्तव्य केवल यह है कि अपनी शारीरिक शक्ति से अन्य तीनों वर्णों की सेवा करे। किन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आर्य राष्ट्र में यह चारों विभाग बिल्कुल एक जैसी स्थिति के होते हैं, इनमें कोई छोटा-बड़ा या ऊंचा-नीचा नहीं होता। यह कोई Fixed casts पैत्रिक जातियां नहीं है। यह गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर स्थिर होती हैं। यदि शूद्र के गुण, कर्म, स्वभाव ब्राह्मण जैसे हो जाएं तो वह ब्राह्मण बन सकता है, और इसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र बन सकता है। हमारे राष्ट्र में सब को उन्नति करने के अवसर समान प्राप्त हैं, परन्तु कर्तव्य भिन्न-भिन्न हैं। हजारों लाखों वर्षों तक भारतवर्ष में वेद के इस आदेशानुसार राष्ट्र का निर्माण होता रहा, और यह देश जगद् गुरु कहलाता रहा। मनु महाराज ने अपने धर्म शास्त्र में लिखा है।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रम् शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

कि इस कि इस देश में आकर संसार के प्राणी अपने धर्म कर्म की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। जब से हमने वेद की शिक्षा को भूल कर मन-माने वाद घड़ने आरम्भ कर दिये तब से हम दुःख उठा रहे हैं और जब तक फिर से वैदिक धर्म की शरण ग्रहण करके उसके आदेशानुसार जीवन व्यतीत नहीं करते, तब तक दुःख उठाते रहेंगे। पूर्व की ओर से कम्यूनिज्म की जो लाल आंधी उठती हुई दिखाई देती है, जिसने कि चीन और पश्चिमी बंगाल आदि में ऊधम मचा रखा है, जो कारखानों के अधिकारी पूंजी-पतियों और मजदूरों के मध्य नित्य झगड़े उत्पन्न करके और रूस जैसे

विदेशी देशों के इंगित पर चल कर हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र को ही विध्वंस करने की धमकी दे रहे हैं उनका एक, और केवल एक, प्रतीकार हो सकता है, वह यह है कि संसार में फिर से वैदिक धर्म की शिक्षा का प्रचार और प्रसार किया जाए ताकि संसार के प्राणी वेद की शिक्षा का, जिसका कि करोड़ों सालों तक परीक्षण हो चुका है, अनुकरण करके अपने जीवन को शान्तिमय और सुखी बनाएं।

रूस की आँखों देखी बातें

हम अपनी पुस्तक को यहां तक लिख चुके थे कि हमें एक अंग्रेज लेडी मिसेज़ फ्रेडा एटले के दो निबन्ध देखने का अवसर मिला, जो उसकी किताब Lost Illusion अर्थात् "आंखें खुल गई" में उल्लिखित हैं। इन निबन्धों में उस देवी ने रूस की आंखों देखी बातें लिखी हैं। इनके अध्ययन से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है कि रूस में कम्युनिज्म का परीक्षण बुरी तरह असफल रहा। हमने इसी पुस्तक में किसी स्थान पर लिखा है कि साम्यवाद और समाजवाद के सिद्धान्तों को अपनाने में सबसे बड़ा दोष यह है कि जब मजदूर लोग राज्याधिकारी बन जाते हैं तो वे भी 'एक विशेष अधिकार रखने वाला दल' बन जाते हैं और उनमें भी वही बुराइयाँ, अपितु उन से अधिक भयंकर रूप में, प्रकट हो जाती हैं जिन की निन्दा वे धनी-मानी लोगों के विषय में किया करते थे। उदाहरणतया वे अपने सेवकों पर मनमानी सख्तियाँ करने लगते हैं और अपने तथा अपने साथियों के लिए विशेष माँगें स्वीकृत करा लेते हैं और बेचारे सर्वसाधारण मजदूरों से कठोर तथा अनुचित व्यवहार करते हैं। हम नीचे उस देवी के इन निबन्धों का भावानुवाद लिख रहे हैं ताकि पाठकों को हमारे दावे की सचाई पर विश्वास हो सके। वह देवी लिखती हैं—

निम्न पृष्ठों में हम इस देवी के उन प्रस्तावों का उलथा दर्ज करते हैं। यह देवी लिखती है कि "मैं आरकेडी के समीप पूर्व से आने तक उसकी बहन और उसके दो पुत्रों के साथ उनके दो छोटे-छोटे कमरों में रहा करती थी। यह मकान राजनैतिक सख्त श्रम करने वाले कैदियों का था, इसका मतलब कि यह वह लोग थे,जिन्होंने जार के जमाने में साईबेरिया में कैद काटी। मुझे कोई नौकरी न मिली थी, मेरे पास कोई 'रोटी कार्ड' भी न था। मैं भोजन कहाँ से प्राप्त करती? अन्त में मुझे कुछ उलथा करने का और

कोई सम्पादन का कार्य मिल गया। मैंने कुछ निबन्ध लिखे परन्तु इनसे मुझे इतनी आय न हुई कि मैं भोजनकार्ड प्राप्त कर सकती। यह सर्दी और भूख के दिन थे। प्रातःकाल के समय हम आलू की रोटी और कुछ सब्जी खाते थे। मैं यह सब्जी गले से नीचे नहीं उतार सकती थी। यह बहुत अस्वादिष्ट थी। परन्तु निर्धन रूसियों के लिए यह सबसे ज्यादा शान्ति देने वाला भोजन था। पाँच बजे सायं तक मैं रोज रोटी और आलू से गुजारा करती। इसके पश्चात् चार मनुष्य उस भोजन में सम्मिलित होते जो तीन आदमियों के लिये सामूहिक रसोई खाने में दिया जाता था। इस पर १ शिलिंग ४ पेंस प्रति मनुष्य व्यय या खर्च होते थे। मक्खन की तो हमने कभी सूरत भी न देखी थी। हाँ, दोनों लड़कों को कारीगरों के तौर पर २ पौंड मारग्रेन प्रतिमास मिल जाती थी। हम रसोई घर में खाना खाते थे, और इसे स्नानागार के तौर पर भी वर्तते थे। फिर भी हमें स्नान करने का अवसर कभी सौभाग्य से ही प्राप्त होता था। हमें प्रतीत न होता था कि हमारे मकान में रहने वाले सैंकड़ों आदमियों के लिए पानी कब गर्म किया जायगा और उनको कब मिलेगा। कहने को हम विशेष व्यक्तियों में से थे। परन्तु जब हम मास्को में रहते थे तो हमें बड़ी कठिनता से सप्ताह में एक या दो बार पानी मिलता था। मास्को में वर्षा बहुत होती है, बाज़ारों में पानी फिरने लगता है। कारण यह कि नालियां ठीक तौर पर काम नहीं करतीं। सर्दी बहुत होती है। परन्तु घरों को कभी २ गर्म किया जाता है। हमें दिनभर खिड़कियां बन्द रखनी पड़ती थीं जिससे हम अपने कमरे की गर्मी को तीन दिन तक स्थिर रख सकें। मैं अपना बहुत सा समय दफ्तरों में जाकर यह पता लगाने पर व्यय करती, कि वे कमरे कहाँ हैं जिन का हमें वचन दिया गया था, और जिनके लिए हमने १०० पौंड दे दिये थे। कुछ मेरे रूसी मित्र थे जिनसे मैं लण्डन में मिली थी, अब यह मास्को में विशेष ऊंचे पदों पर स्थित थे। हमारी मित्रता तो स्थिर थी, परन्तु विचार करती थी कि उन्हें इस बात का पता लग चुका था कि मेरे मन में रूस के प्रति इस कदर प्रेम न था जितना दो वर्ष पूर्व था। मैं ज़रा बच-बच कर बात करती थी और जब यह मेरे सामने उन बलिदानों का जिकर करते जो वह रूस को व्यवसाय के तौर पर ऊंचा करने के लिए कर रहे थे तो मैं अधिक प्रेम न प्रकट करती।

वह निर्बुद्धि न थे और न ही मैं बुद्धिहीन थी। वह जान गये होंगे कि मैंने देख लिया था कि कम्युनिस्ट पार्टी के पद-अधिकारियों को सब चीजें अच्छी से अच्छी मिलती थीं। और सारा बलिदान बेचारे निर्धन मजदूर और किसान करते थे।

सामाजिक भेदभाव

इस से प्रायः एक साल पीछे मैंने कई स्त्रियों को यह शेखी बघारते हुए सुना कि वह "विशेष स्टोर्ज" से हर एक वस्तु खरीद सकती हैं। इस से प्रतीत होता था, कि उनके पति कोई उच्च पद-अधिकारी थे। मुझे थोड़े समय बाद ही रूस में सामाजिक भेदभाव का पता लग गया। "सोवियट सोशल रजिस्टर" उन कम्युनिस्ट पद-अधिकारियों के राशन कार्ड पर अंकित किया जाता है जो सोवियट के नये बड़े आदमी कहलाते। मुझे ज्ञात हो गया कि कई ऐसी विशेष दुकानें हैं जहाँ से सिर्फ पार्टी के उच्च अधिकारी ही वस्तु खरीद सकते थे। इन के अतिरिक्त "बन्द वितरण घर" (Closed distributors) भी थे जहाँ ऐसे भोज्य पदार्थ और वस्त्र प्राप्त हो सकते थे जो और किसी जगह प्राप्तव्य न थे। या अगर प्राप्त भी हो सकते थे तो बहुत बड़ा मोल देने पर ही हस्तगत हो सकते थे। इसके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी के पार्टी अधिकारियों के लिये विशेष वितरण-घर थे, इनमें वह विशेष व्यक्ति भी वस्तुएं खरीद सकते थे जिन का पार्टी से तो कोई सम्बन्ध न था मगर अपने काम में विशेष अग्रसर थे। बड़े-बड़े कारखानों से मज़दूरों को भी यह अधिकार प्राप्त था। रूस में साधारणतया लोगों की निम्न श्रेणियां थीं। प्रथम वह रूसी जिनको क्रैमलिन आदमी कहा जाता है। इन में "कमिसर्ज़ बड़े-बड़े ट्रस्टों के प्रधान, सोवियटों की केन्द्रीय कमेटी के मेम्बर और कम्युनिस्ट पार्टी के उच्चतम मेम्बर शामिल थे। दूसरे दर्जे पर आग पू दूकानें थीं यह वैसी अच्छी थी जैसी कि क्रैमिलन लोगों के लिए थी। इस के पश्चात् गोर्ट ए० पी० जो उच्च अधिकारियों के लिए थीं। यह सब पार्टी के ही आदमी थे। हां, कुछ सांइसदान और इंजीनियर भी कृपापात्र थे। इसके पश्चात् की गौर्ट बी० थी, जो दरम्याना दर्जे के लोगों के लिए थीं। यह पार्टी के ऐसे आदमी थे जो निचले दर्जे के थे या अन्य पार्टी के उच्च श्रेणी के कारीगर थे। इन के अतिरिक्त सुर्ख फौज के अधिकारियों के लिए दूकानें थी जो माल से भरी थीं। कुछ ऐसे वितरण-केन्द्र भी थे जिन में सुर्ख बहुत जरूरी सामान

तैयार करने वाले कारखानों के मजदूर ही चीजें खरीद सकते थे। ये भिन्न जगहों में भिन्न प्रकार की होती थीं। इन में से कुछ मजदूर लोग केवल मक्खन दूध मांस का सरकारी राशन ही ले सकते थे। दूसरी ऐसी दूकानें थीं जिनमें वस्तुएं विक्रय-अर्थ न थीं परन्तु क्रैम लोगों की दूकानें गोर्ट ए० और इन सब विदेशी स्टोर्ज़ में सदा बहुत ज्यादा भोज्य पदार्थ और कपड़ा आदि जमा रहता था, जिसे साधारण रूसी खरीद सकते थे। अन्तत: मेरे पति को एक विशेषज्ञ के रूप में दूकान गोर्ट बी० के लिए एक किताब मिली जिस में उसे दो पौंड़ मांस और २ पौंड़ मक्खन प्रतिमास और कुछ दूसरा भोज्य राशन और कपड़ा लेने के लिए अधिकार दिया गया था। लेकिन यह रियायत भी उसे वापसी के १ वर्ष बाद प्राप्त हुई थी। रूस में सामाजिक दर्जा हमारे राशन कार्डों की बिना पर मुकर्रर किया जाता है। सिर्फ उच्च दर्जे के कम्युनिस्ट अफसरों को पर्याप्त भोजन और कपड़ा लेने की विशेष आज्ञा थी। स्टालिन ने इस एक चाल से लेनिन फारमूला और मार्क्स की हिदायतों का अन्त कर दिया था कि एक अफसर को मजदूर के मुकाबले में ज्यादा वेतन न देना चाहिए। यह चाल इस लिए चली गई थी कि पार्टी के लोग उसके ज्यादा से ज्यादा साथी रह सकें। अगर इन हिदायतों से कोई ज़रा भी इधर उधर होता था तो उसे पार्टी से निकाल दिया जाता था और उसे इन भोज्य पदार्थों से वंचित कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त और भी कई तरह की रियायतें छीन ली जाती थीं। जो रुपए की जगह में ली जाती थीं। उदाहरणतया मोटरकारों का प्रयोग, मकानों का दिया जाना और विशेष हस्पतालों से दवाइयां लेने, विशेष डाक्टरों की सेवा से लाभ उठाने इत्यादि। जो केवल नए अमीरों और वजीरों के लिए विशेष थीं। इन्हीं दिनों में मेरी एक मित्र जेन आ गई, जो ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी की उस समय से मेम्बर थी जबकि उसकी उमर १४ साल की थी और वह लण्डन यूनिवर्सिटी लेबर पार्टी की मेम्बर थी, और मैं उसकी प्रधान थी। वह उत्तरी लण्डन में मेरे साथ ही एक कम्युनिस्ट पार्टी को मेम्बर थी और नवम्बर मास में माकस एंजल्स्ज इन्स्टीच्यूट "Marks angles · Institute" में नौकर होकर- आ गई थी। उसके मार्क्स पहुंचने से मुझे बड़ी खुशी हुई चूंकि वह मेरी पुरानी और सच्ची मित्र थी। मैं उसके साथ खुल कर बातें कर सकती थी। मास्को में यह भी एक सौभाग्य की बात है। हमें जल्दी

ही कृषिघरों और पांच वर्ष की तजवीज को चार साल में पूरा करने का पता लग गया। यह तजवीजें हमारे इर्द गिर्द सख्त मुसीबत का मजमून बन चुकी थीं, उनका अभिप्राय बहुतों के लिए भूखे मरना और अधिक संख्या के लिए आधे पेट खाना था। कृषिघरों और कारखानों का अभिप्राय एक विशेष अधिकार रखने वाली श्रेणी बनाना था। जो अपने जीवन के तरीकों के कारण साधारण लोगों से बिलकुल पृथक् थे।

रूस में अन्न-अकाल

हमें ज्ञात हो गया था कि रूस में अकाल क्यों पड़ा था और यह अवस्था क्यों पैदा हुई जिसमें बेचारे (Kulaks) क्युलोकों का सफाया किया गया। उसमें उनके साथ बड़ा अत्याचार किया गया, देश की आर्थिक दशा का पतन हो गया, १९२७ और १९२८ में, जब कि मुझे सोवियट रूस के बारे में सब से पहले गल्त विचार हुआ था, एक भारी आर्थिक और राजनैतिक हलचल पैदा हो चुकी थी। नई आर्थिक पौलिसी से केवल कुछ व्यक्तियों को ही व्यवसाय करने की आज्ञा दी गई थी। इससे लोगों को बहुत लाभ हुआ। मगर स्टालिन ने इसे बन्द कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि रूस में नए सिरे से पूंजीपतिवाद आरम्भ हो गया। १९२६ तक मंडी में जो अनाज था उसका ⅔ भाग किसानों के केवल ६% हिस्से की ओर से विक्रय किया जाता था। यह क्युलाक (किसान) लोग दरमियाना आदमियों के, हाथ नए दूकानदारों और होटल वालों और छोटे-छोटे कारखाने वालों के हाथ बेचते थे। यह उन दिनों रूस में खुम्बों की तरह पैदा हो गए थे। किसान लोग अपनी ऐसी आर्थिक दशा आप ही पैदा कर रहे थे जो कि सोवियट हुकूमत के अख्तयार से बाहिर थी। बोलशेविक पार्टी के नर्म और गर्म दल के बीच इस बारे में भिन्न-भिन्न सम्मति थी कि किस किस्म की पौलिसी का अनुकरण किया जाय ? उसे निजी शक्ति के लिए प्रयत्न के द्वारा मलियामेट किया गया था। स्टालिन को विद्वत्तापूर्ण ज्ञान बहुत थोड़ा था, न्यून-से-न्यून उसे पौलिसी के ठीक या गल्त होने के साथ बहुत कम सम्बन्ध था। वह तो केवल सब पर शक्ति लागू करने का इच्छुक था और उसने ट्रोटस्की को और भिखारियों और नर्म दल की सहायता को गर्म दल से कुचल कर यह ध्येय प्राप्त किया था और फिर ट्रोटस्की से भी अधिक गर्म पालिसी का अनुकरण करके उसने दायें दल के विरोध को खत्म किया। इसका अन्तिम

परिणाम यह हुआ कि दोनों दलों की पालिसी की बुरी बातें स्टालन की पार्टी में आ गईं। जुलाई १९२८ में स्टालिन इस बात पर जोर दे रहा था कि जमीन की व्यक्तिगत खेती की सहायता की जानी चाहिए। सब का मिल कर खेती करने का तरीका गलत है। परन्तु अक्तूबर तक स्टालिन ने इस पौलिसी को बदल दिया और भिखारण पार्टी और ट्राटस्की को पूंजीपति नर्मदल वाले कहकर निन्दा की जाती थी और कहा जाता था कि यह रूस में फिर से पूंजीपतिवाद लाना चाहते हैं। स्टालन इन दिनों उच्च कार-खानों की तरक्कीपूर्ण मिली-जुली खेती-बाड़ी की सहायता कुलाकों की तबाही और किसानों की स्कीम का अनुकरण करने की तैयारियां कर रहा था। दिसम्बर १९२८ तक मास्को में जो रूस का सब से ज्यादा प्यारा देश है, भोज्य पदार्थों की कमी प्रतीत होने लगी थी। किसानों ने अपना अनाज छुपा लिया था, उसे बोने से इन्कार कर दिया था। पार्टी के उन अधिकारियों का कत्ल कर दिया जिन्होंनें उसकी फसलों पर कब्जा कर लिया था। नवम्बर १९२९ में स्टालिन ने घोषणा की कि व्यक्तिगत खेती खत्म की जाती है और कोलाकों के श्रेणी के तौर पर खत्म किया जाने और उनकी जगह सब स्थानों पर मिलीजुली खेती कायम किए जाने का हुक्म दिया गया इस तरह अत्याचार और भय के द्वारा साम्यवादी तरीके पर खेती-बाडी के मसले को हल करने का फैसला किया गया।

किसानों की हत्या

इसके बाद सोवियटराज्य द्वारा किसानों की हत्या आरम्भ हुई और निर्दयता के लिये सारे इतिहास में ऐसा और कोई उदाहरण नहीं मिलता। मैं जानबूझ कर शब्द कतल बर्त रही हूं। यह ठीक है कि किसानों को कतार में खड़ा करके गोली से नहीं उड़ाया जाता था लेकिन इससे कहीं अधिक निर्दयता से कतल करते थे। इन में से कुछ बच रहे थे। जिन्होंने खराब भूमियों में, जिनमें इन्हें जलावतन किया गया या खेतीबाड़ी करके फिर से जीवन शुरू किया, स्त्रियां और बच्चे मर गए। लाखों किसानों को आर्कटिक इलाकों में लकड़ी के जेलखाने में बन्द किया गया जिनमें भोजन न मिलने, सर्दी और कठिन श्रम और आगपू चौकीदारों के कोड़ों की मार से मक्खियों और मच्छरों की तरह मरने लगे। उनके साथ फिराऊन या एशिया के अत्याचारियों के से गुलामों का सा बर्ताव किया जाता था। सोवियट पार्टी

ने इस डर से कि कहीं आपे से बाहर होकर भूखे मरने वाले किसान बदला न लेने लगें, इन लोगों का सफाया करने का प्रयत्न किया। गांव में बड़ी अत्याचारपूर्ण क्रियाएं की गई। क्युलाकों और गोलियां चलाने वाले दस्तों के द्वारा इस भयंकर कत्लग्राम के कई कारण थे। उदाहरणतया धर्मान्धता भय और बदला आदि-आदि। कई उत्साही नौजवान मर्द और स्त्रियों को, जिनकी दिमागी अवस्था इस किस्म के हुक्मों से खराब हो गई थी, यह विश्वास हो गया था कि किसानों को उनके अंतिम भोज्य पदार्थों से वंचित करके एक साम्यवादी राज्य-निर्माण के कार्य में सहायता दे रहे हैं। सिर्फ कोलाकों की ही लूट-खसोट न थी बल्कि उन्हें जलावतन और कत्ल किया जाता था केवल थोड़े से बेजमीन किसानों को छोड़ कर बाकी तमाम मिली-जुली खेती को अनधिकार चेष्टा ही समझते थे चूंकि किसानों को सरकार की तरफ से आज्ञा दी जाती थी कि वह अपनी तमाम पूंजी को एक जगह जमा कर लें और हर एक वस्तु को जो उनके पास है मिली-जुली खेती के लिए दे दें, नहीं तो उन्हें साईबेरिया को जलावतन किया जाता था या गुलामों की तरह कैम्पों में श्रम करना पड़ता था। इस लिए वह अपने सूअरों मुर्गों, भेड़ों, और गौओं आदि को मार खा जाते या खालें गोश्त नकद रुपया लेकर बेच देते और इस रुपये को छुपा रखते। १९३४ तक रूस में घोड़ों की संख्या १९२९ से आधी रह गई थी। भेड़ों और सूअरों की संख्या आधी से कम रह गई थी। मास्को में मेरे पहले वर्ष में जब यह विश्वास दिया जाता था अगर किसान मिली-जुली खेतली का तरीका अपना लें तो खुराक का मसला हल हो जाएगा। परन्तु १९३१ तक जमीन का बहुत सा भाग मिली-जुली खेतीबाड़ी के अधीन लाया जा चुका था तो भी किसानों की अवस्था अच्छी न हुई थी। चूंकि वह जमीन के मालिक न रहे थे। इस लिए कोई बात इसे अच्छा बनाने के लिए उत्साहित न करती थी चूंकि राज्यसत्ता तमाम अनाज नाममात्र किश्तों पर जबरदस्ती ले लेती थी। इस लिए मिली-जुली खेतीबाड़ी पहले की निस्बत भी कम कामयाब थी। किसान लोग नई आर्थिक पौलिसी से हकूमत का विरोध कर रहे थे। सिर्फ उतना अनाज बोते और काटते थे जितना उन्हें दरकार था। इसका और काली जमीन वाले इलाके में वर्षा न पड़ने का यह परिणाम निकला कि फसल पिछले साल की अपेक्षा बहुत कम पैदा हुई, लेकिन इस पर भी गवर्नमैंट ने अपनी

माँग जबरदस्ती पूर्ण कराई और किसानों से कहा कि उनका अपना कसूर है कि अनाज कम पैदा हुआ है। परिणाम यह हुआ कि भयंकर अकाल पड़ गया। विशेषतया यूक्रेन की अनाज पैदा करने वाली उपजाऊ भूमियों में।

जो विदेशी व्यक्ति रूस में आते थे, रूसी अफसर सदैव उनके आगे-पीछे रहते थे और इस भूखे मरने वाले देश में उन्हें होटलों के अन्दर पेट भर भोजन खिलाया जाता था। पुनः जब जब वह अपने देश में जाते थे तो रूस में अकाल के बारे में तमाम खबरों की निन्दा कर देते। परिणाम यह हुआ कि स्टालिन की मनमानी हत्याएँ कामयाब हो गईं और किसानों में विरोध की शक्ति जाती रही। १९३२ से वह जानते थे कि अगर उन्होंने उतना अनाज पैदा न किया जितना गवर्नमेन्ट को दरकार है या खुद उन्हें अपने खाने के लिए चाहिए तो उन्हें भूखे मरना पड़ेगा। तंग आकर उन्हें गवर्नमेन्ट की शर्त्तों पर काम करना पड़ रहा है और वह फिर एक बार गुलाम बन गए हैं। मिली-जुली खेती-बाड़ी के खेतों में उनका काम केवल जबरदस्ती ली जाने वाली मेहनत है। और वह ऐसी है जैसी कि बीच के जमाने में अपने गुलामों से लिया करते थे।

साधारण और विशेष अवस्थाओं में फर्क

यही लेडी साहिबा अपने एक और निबन्ध में लिखती है कि रूस में साधारण आदमियों और विशेष अधिकार रखने वाले अमीरों की अवस्थाओं में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। सोने की गाड़ी में लेटे हुए मोटे ताज़े अफसर और आराम से ज़िन्दगी गुजारने वाले पाषाणहृदय ओ. जी. पी. यु. चौकीदार अफसरों का भूखे मरने वाले साधारण लोगों के साथ क्या मुकाबला हो सकता है। हाकम मातहत, अत्याचारी और पीड़ित में बड़ा अन्तर है। क्रीमिया रैस्ट होम (Rest Home) में जहां हमें जगह मिल गई थी, भोज्य पदार्थ इस कदर बहुत थे कि रोटी और बर्फ और केक बाहर फेंक दिये जाते थे जबकि मेहमान लोग उन्हें अपने खाने की प्लेटों में छोड़ जाते थे, कारण यह कि उन्हें बहुत ज्यादा भोजन दिया जाता था। यह (Rest-Home) क्रीमयन रिपब्लिक की सोवियट मर्कज़ी कमेटी की मलकीयत था और हमें कींगहोफ की कृपा से इसमें जगह मिली थी। यह आदमी हमें लण्डन में मिला था। यह एक उच्च रूसी और इसी देश का रहने वाला था, यह जगह उच्च पार्टी के कम्यूनिस्टों के लिए थी। हमारा यहां रहने का कोई

अधिकार न था लेकिन हमें इससे कम्यूनिस्ट पार्टी के अमीरों के जीवन की अन्दरूनी दशा का ज्ञान हो गया। इन पुराने महलों और रूसी अमीरों की इन देहाती कोठियों तक भूखे मरने वाले लोगों की आवाज पहुँचने नहीं पाती थी। पूर्व समय में भी ऐसा ही होता था लेकिन अन्तर केवल इतना था कि रूस में अमीर आदमियों की एक नई श्रेणी पैदा हो गई थी। यह सम्भव है सोवियट यूनियन में जीवन आराम से न गुजरता हो लेकिन राजनीतिक तौर पर हमें यह सबक दिया जो हमें और किसी तरह न मिल सकता था और झूठे नारों और मक्काराना दावों की असली हकीकत मालूम हो गई। सोलह साल के तजरबे के बाद मुझे बर्टर एंड रसल की सामाजिक फिलासफी समझ में आ गई। पूर्ण अधिकार किसी भी अल्प जाति के दिमाग को खराब कर सकता है और बुरे आदमियों की निस्बत धर्मान्ध लोग ज्यादा खराबी कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति या स्त्री निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकती कि उसके कार्यों का ठीक परिणाम क्या निकलेगा सोवियट रूस में ६ साल के रहने ने मुझे यह विश्वास दिला दिया कि प्रजातन्त्र अपनी सारी कमजोरियों के साथ भी किसी पूर्ण अधिकार रखने वाले राजा से बेहतर है चाहे वह राजा कितना ही दयावान् क्यों न हो या होने का दम भरता हो। क्या कारण है कि कम्यूनिस्ट जुल्म और अत्याचार खुफिया पुलिस के भय का हर समय महसूस होने से ही हम लोगों की आंखें खुल गईं। जो अपने आप को पश्चिमी आजाद ख्याल का कहते हैं। रूस की सामाजिक आर्थिक प्रजातन्त्र अवस्था हमारे से कोई अच्छी नहीं है। क्या कारण है कि हम यह नहीं समझ सकते कि कम्यूनिज़्म तजरबे के तौर पर नाकामयाब है। यह तो सिर्फ एक तरफ गाड़ियों की आमदोरफत की मानिन्द हैं जिसके आखिर में खुफिया पुलिस का भय दिलों में मौजूद होता है और साधारण लोगों में सामाजिक एकता और स्वतन्त्रता पैदा करने के लिए नए नियमों और नई सभ्यता की जरूरत है। आरकेडी को कम्युनिस्ट पार्टी की इन निर्दय और इन्कलाब को नष्ट करने वाली हरकतों से इस कदर दुःख हुआ कि उसे इस बात में भी शुबह पैदा होने लगा कि आया स्टालिन के साम्यवाद का कोई अमली बदल सम्भव भी है। उसे इस बात में भी शक था कि इन खराबियों का कोई इलाज हो भी सकता है! मैंने देखा किस तरह रूसी लोग तमाम आशा से वंचित होकर लापरवाही और संशयात्मकता में गर्क हो रहे थे और उन्होंने इस नई गड़बड़

ग्रौर निर्दय दुनिया में ग्रपने लिए जो कुछ भी वह करते थे, करने का निश्चय कर लिया था। इस दुनिया में दया करना जुल्म है, बेकारी ग्रौर धोखाबाजी ऐसी सिफतें थी जो जिन्दा रहने के लिए बहुत जरूरी हैं।

सोवियट बच्चे

कई दफा मुझ से सोवियट तालीमी शिक्षा के बारे में पूछा जाता है ग्रौर प्रश्न किया जाता है कि क्या बच्चों के लिए कुछ भी नहीं किया गया। मुझे वे बेघर बच्चे याद ग्राते हैं जो ग्रोरलंका में हमारे मकान के ऊपर रहते थे, ग्रौर रोटी के टुकडों के लिए ग्रौर गर्म पानी के लिए भीख मांग करते थे। मुझे कपड़े के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के जर्दरंग बच्चों की याद ग्राती है जो ऐसे कमरों में इकट्ठे रहते थे जिनके पास कोई बिस्तर न था। रूस में ऐसे बच्चे भी हैं जो कठिन जीवन गुज़ारने के कारण उससे शिक्षित वृत्ति हो गए हैं ये बेचारे खाली कमरों में रहते हैं। कई बार उन्हें ग्रपने घर का सब सामान बेच कर ग्रपने मां बाप के लिए खाना लाना पड़ता है, जो सरकारी ग्रफसरों ने पकड़े होते हैं। ग्रगर उनका कोई ऐसा रिश्तेदार नहीं जो पनाह दे सके या उनका माँ बाप नहीं जो घर ग्राकर उनकी खबर ले सके तो ये बेचारे उन बेघर बच्चों के गिरोह में सम्मिलित होने पर विवश हो जाते हैं ग्रौर सोवियट दुनिया में भीख माँगना, चोरी करना या जंगली जानवरों की तरह सीख जाते हैं। यह कम्युनिस्ट तालीम का एक प्रकार है। स्टालिन ने जितने भी बेरहम कार्य किये हैं उन सब में हत्यापूर्ण कार्य यह था कि उसने बड़ी उमर के बच्चों के लिए एक कानून पास किया। १९३५ में उसने एक हुक्म द्वारा १२ साल की उमर के बच्चों को चोरी के जुर्म में मौत की सजा का विधान किया ग्रौर पुरुष को ग्रख्त्यार दिया गया कि वह सोवियट समाज को इन ग्रभागे बच्चों के बजूद से पवित्र कर दे। ग्रगर ग्राप रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के किसी उच्च मेम्बर के बेटे या बेटी हैं तो ग्रापके लिए रास्ता साफ कर दिया जाएगा ग्रौर ग्रापको वही रियायतें प्राप्त होंगी जो किसी पूंजीपति देश में धनाढ्य व्यक्तियों के बच्चों को प्राप्त हैं। सोवियट यूनियन में सब के लिए तरक्की करने के लिए एक से मौके नहीं हैं। साधारण लोग ग्रौर कम्युनिस्टों के लिए ग्रलग-ग्रलग स्कूल हैं। ऐसे मुल्क में सबको एक जैसे तालीमी मौके कैसे प्राप्त हो सकते हैं जिनमें कुछ लड़कों को पेट भर कर रोटी भी न मिलती हो, न रहने के लिए

मकान हो। कहाँ तक लिखा जाए, इस मजमून में यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि कम्युनिज्म ने दुनिया के सामने वड़ हाँकी थी कि सारी मुश्किलों का हल केवल उसके पास है, यह कोरी गप है। कम्युनिज्म को जहाँ भी परीक्षण की कसौटी पर परखा गया है यह बजाय सोने के ताम्बा साबित हुआ है। हमें यह देख कर अफसोस होता है कि हमारे पश्चिम की मत वाले नौजवान केवल पुरजोश कार्य करने वालों के नारों और फिकरों के फेर में आकर अपने करोड़ों सालों तक के तजरबे में लाए हुए सिद्धान्तों को भूल रहे हैं। अगर एक भी भाई को हमारी इस किताब का अवलोकन सीधे रास्ते पर लाने का कारण हुआ तो हम अपनी सारी मेहनत को सफल समझेंगे।

●

अध्यात्म और नैतिकता को समाप्त कर कम्यूनिज्म मनुष्य को पशुता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा करता है।

साम्यवाद : नवीन तथा प्राचीन

—स्व० महात्मा नारायण स्वामी—

वर्तमान युग में एक ओर जहां साम्यवाद का दौर है तो दूसरी ओर प्रजातन्त्रीय राज्य-प्रणाली फूल फल रही है और तीसरी ओर एक तंत्रीय राज्य-व्यवस्था (Dictatorship) की तूती बोल रही है। इसलिए यह युग किसी एक व्यवस्था का युग नहीं है। इसे खिचड़ी युग ही कहना कदाचित् अधिक उचित होगा फिर भी सर्वसाधारण की रुचि साम्यवाद की ओर अधिक है, इसलिए उन्हीं के विचार के लिए पे पंक्तियाँ लिखी जाती हैं।

साम्यवाद के भेद

साम्यवाद के दो भेद हैं:— (१) एक साम्यवाद वह है जो इस देश में वेद की शिक्षानुसार माना जाता था और जिसका क्रियात्मक रूप आश्रम और वर्ण व्यवस्था है। (२) दूसरा आधुनिक साम्यवाद वह है जो ईसा के जन्म से पहले पश्चिमी एशिया और मिस्र आदि में प्रचलित था और जिसका परिवर्तित रूप वर्तमान साम्यवाद (Social and Communism) है। हम इन पृष्ठों में पहले वैदिक साम्यवाद की बात कहेंगे।

वैदिक साम्यवाद का रूप

ऋग्वेद में जो सर्वसम्मति से, संसार के पुस्तकालय में सब से पुरानी किताब मानी जाती है, साम्यवाद की शिक्षा इस प्रकार दी गई है :—

"सब मनुष्य आपस में भाई-भाई की तरह मिलकर सौभाग्य के लिये वृद्धि करें। इन में कोई बड़ा या छोटा नहीं है। सर्व शक्तिमान् परमेश्वर (रुद्र) इन सब का पिता और अनेक प्रकार के भोजनादि (धन-धान्य) देने वाली पृथिवी सब की माता है।"*

* अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वया रुद्र एषां सुदुघा पृथिवी सुदिना मरुद्भ्यः॥
ऋ० ५/६०/५

असंदिग्ध शब्दों में वेद बतलाता है कि तुम सभी संसार के मनुष्य किसी देश विशेष, जाति या सम्प्रदाय विशेष के नहीं, बराबर-बराबर हो, तुम सब अपने को एक ही पिता (ईश्वर) और माता (पृथिवी) की सन्तान समझकर सौभाग्य के लिए वृद्धि करो।

सौभाग्य के लिये वृद्धि

सौभाग्य के लिए वृद्धि करने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार एक परिवार में माता और पिता के सभी पुत्रों (प्रत्येक भाई) को एक प्रकार का अवसर उन्नति करके आगे बढ़ने का प्राप्त हुआ करता है; इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को प्राप्त है। उनका कर्त्तव्य है कि पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करते हुए सभी उन्नति करें और आगे बढ़ें। यदि कोई उनमें से आलस्य और प्रमाद करता है तो आवश्यक है कि वह अन्यों से पीछे हो जायगा, जो पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वैदिक साम्यवाद की समता

वैदिक साम्यवाद की समता, पुरुषार्थ का अवसर प्राप्त होने और धार्मिक जीवन व्यतीत करने में है, फल प्राप्ति में नहीं। फल तो प्रत्येक मनुष्य को, उसके क्रमानुसार ही मिलता है। कोई यदि चाहे कि कुछ न करके, संसार के धन धान्य में बराबर का साझी बन जाय, जैसा कि कई बेसमझ आदमी, समझ लिया करते हैं, तो उन्हें समझ लेना चाहिए कि वे मूर्खों के स्वर्ग का स्वप्न देख रहे हैं। पं० जवाहर लाल नेहरु जो इस देश में आधुनिक साम्यवाद के सबसे बड़े नेता समझे जाते थे, वे भी पुरुषार्थ करने के अवसर-प्राप्ति ही का समर्थन करते थे।

एक जगह उन्होंने लिखा है: – यह बात किसी ने नहीं कही जैसा कि 'पायोनियर' के एक लेख से प्रतीत होता है कि सब मनुष्य शारीरिक या मानसिक दृष्टिकोण से बराबर हैं या सभी जातियों में इसी प्रकार की समता स्थित है। अपितु जो कुछ कहा गया है और जिसे बुद्धिमानों का अधिकांश भाग स्वीकार करता है, वह यह है सभी मनुष्यों को (उन्नति का) अवसर-प्राप्ति में समता होनी चाहिए। वर्तमान पूंजीवाद में यह अवसर न प्राप्त है और न हो सकता है।*

---

* पं० जवाहर लाल के शब्द ये हैं:—No one has said as the 'Pio-

इस समता का रूप वैदिक साम्यवाद में क्या है ? वैदिक साम्यवाद में उपर्युक्त समता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? उसके साधनों का रूप आश्रम और वर्णव्यवस्था में विदित है। मनुष्य को, जब से वह होश सम्भाल कर काम करने के योग्य हुआ करता है; उस समय से लेकर अंत समय पर्यन्त जो कुछ वह करता या कर सकता है, उस सब का एक समष्टि नाम आश्रम और वर्ण है। वर्ण और आश्रम की वैदिक मर्यादा को समझ लेने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

आश्रम और वर्णव्यवस्था

मनुष्य का जीवन चार भागों में विभक्त किया गया है। उन्हीं विभागों का नाम आश्रम है :—

(१) ब्रह्मचर्य आश्रम—अर्थात् विद्यार्थी जीवन।

(२) गृहस्थाश्रम—अर्थात् शिक्षा प्राप्ति के बाद धनोपार्जन और सन्तानोत्पत्ति आदि के द्वारा गृहस्थ जीवन को सुखमय बनाना।

(३) वानप्रस्थाश्रम—निवृत्ति मार्ग की तैयारी करते हुए शिक्षा और सेवा के द्वारा, विना किसी प्रत्युपकार की इच्छा के, जनता का उपकार करना।

(४) संन्यासाश्रम—आत्म-शुद्धि करते हुए धर्म प्रचार करना।

इनमें पहले, तीसरे और चौथे आश्रम त्याग, तपस्या के साथ व्यतीत किये जाने चाहियें और आवश्यकता से अधिक धन अपने पास नहीं रखना चाहिये। दूसरा आश्रम है जिसमें धनोपार्जन करते हुए आराम और आसाइश के साथ जीवन व्यतीत किया जाता है।

---

neer' article seems to imagine that all men are physically or mentally equal, or that all nations are similarly situated. What has been said and what is admitted by the great majority of intelligent men, is that all human being should have an equality of apportunity. The present Capitalist System does not and cannot in the nature of things provide this equality of apportunity.

(The Hindustan Times, Nov. 21, 1933)

गृहस्थाश्रम के चार भेद

आश्रम व्यवस्था पर विचार करने से प्रकट होता है कि गृहस्थाश्रम के चार भेद किये गये हैं और उनको ४ वर्ण कहते हैं। उनका यह विभाग धनोपार्जन-प्रकार अथवा वृत्ति पर निर्भर है। इसका स्पष्टीकरण वर्णों के कर्त्तव्य पर विचार करने से हो जाता है।

वर्णों के कर्त्तव्य

मनुस्मृति के अनुसार चारों वर्णों के कर्त्तव्य इस प्रकार हैं।

(मनु० १/ ८८—६१)

संख्या	वर्ण	लोक सम्बन्धी कर्त्तव्य जीविका की उपलब्धि के लिये	परलोक सम्बन्धी कर्म
१	ब्राह्मण	(१) वेद पढ़ाना (२) यज्ञ (३) कराना दान लेना।	(१) वेद पढ़ना (२) यज्ञ करना (३) दान देना
२	क्षत्रिय	राज्य सम्बन्धी सेवा, जिसमें देश की रक्षा आदि सभी कार्य शामिल हों।	(,,)
३	वैश्य	कृषि, व्यापार, पशु रक्षा आदि।	(,,)
४	शूद्र	शारीरिक परिश्रम सम्बन्धी कार्य जिन में वे समस्त पेशे शामिल हैं, जो शारीरिक परिश्रम से किये जाते हैं।	(,,)

इन विभागों पर दृष्टि डालने से साफ जाहिर हो जाता है कि परलोक (ईश्वर प्राप्ति या आत्मोन्नति) सम्बन्धी कार्य मनुष्य मात्र के लिए एक ही प्रकार के हैं उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। भेद केवल धनोपार्जन की विधियों में है। अर्थात् ब्राह्मण अध्यापनादि कार्य करके अपने निर्वाह योग्य धनोत्पन्न करता है, क्षत्रिय राज्य सम्बन्धी कार्य करके, वैश्य केवल अपने निर्वाह के योग्य ही नहीं अपितु उससे अधिक धन पैदा करता है; जिससे राष्ट्र के भी कार्य चल सकें और देश धन-धान्य से हरा-भरा रहे। शूद्र को शारीरिक परिश्रम से प्रायः प्राप्त ही उतना धन हुआ करता है जितना उनके निर्वाह के लिए आवश्यक होता है।

वर्णभेद जन्म-परक नहीं

पहिले, तीसरे और चौथे आश्रमस्थ नर नारियों का कोई वर्ण नहीं होता इसलिये कि उनके लिये धनोपार्जनार्थ कोई पेशा करना निषिद्ध है। केवल एक दूसरा वर्ण है, जिसमें धन पैदा कनार विहित है। वर्ण वृत्ति पर ही निर्भर होता है जैसा कि कहा जा चुका है।

वर्ण का निश्चय कब होता है ?

ब्रह्मचर्य को समाप्त करके जब ब्रह्मचारी गुरुकुल से वापिस हुआ करता था तब वापिस होने से पहिले उसका वर्ण आचार्य द्वारा निश्चय किया जाता था।● ब्रह्मचर्य की कम से कम अवधि २४ वर्ष की नियत है। अतः स्पष्ट है कि २४वें वर्ष की समाप्ति अथवा २५वें वर्ष के प्रारम्भ में वर्ण का निश्चय हुआ करता था कि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र किस वर्ण के कार्य-पूर्ति के योग्य हुआ। उससे पहिले उसका कोई वर्ण न होता, न हो सकता था। जब वर्ण का प्रारम्भ, कम से कम २४वें वर्ष में हुआ करता है तब उसको जन्म से कहने या मानने के लिए, यही कहा जा सकता है, कि ऐसा करने वाले, वर्ण की मर्यादा को या तो जानते नहीं, यदि जानते हैं तो जानबूझ कर वास्तविकता के विरुद्ध कहते हैं। गीता में भी श्रीकृष्ण महाराज ने वर्णों की रचना गुण और कर्मों से ही हुआ करती है, ऐसा ही माना है।●

इन वर्णों को गृहस्थाश्रम के चार भेद ही समझना चाहिये, इससे अधिक न इनका कोई महत्त्व है और न अन्य आश्रमों से सम्बन्ध।

प्रत्येक वर्ण की श्रेष्ठता

ब्राह्मण की श्रेष्ठता ज्ञान का भंडार होने से होती है। क्षत्रिय की श्रेष्ठता अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक बल का पुंज होने से है। कृषि-व्यापार आदि में वैश्य की श्रेष्ठता है। शारीरिक परिश्रम करने में शूद्र अन्य तीनों वर्णों से श्रेष्ठ हुआ करता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने निपुणता पूर्ण गुणों

●**आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या साजरा मस्मृता॥** मनुस्मृतिः॥

अर्थात् वेदाचार्य इस ब्रह्मचारी की जो जाति (वर्ण) विधिपूर्वक सावित्री द्वारा बनाता है वही अजर और अमर है।

●**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। (गीता)**

से श्रेष्ठ और अन्यों के गुणों की अपेक्षा अल्पज्ञ होने से, अन्यों से अश्रेष्ठ हुआ करता है।

वर्णों में छोटाई बड़ाई नहीं हो सकती

कौन वस्तु किससे बड़ी और कौन किससे छोटी हुआ करती है, इस छुटाई-बड़ाई की नाप तोल एक श्रेणी के भीतर होने वाली वस्तुओं में हुआ करती है। इस बात को समझने के लिये यह आवश्यक है कि यह समझ लिया जावे कि वस्तुओं में दो प्रकार से भेद हुआ करते है:—(१) श्रेणी (Kind) का भेद, (२) दूसरा दर्जों (degrees) का भेद। जो वस्तुएँ एक श्रेणी की हुआ करती हैं उनमें दर्जों का भेद होता और हो सकता हैं, परन्तु जो वस्तुएँ विभिन्न श्रेणियों की होती हैं उनमें दर्जों का भेद नहीं हुआ करता। यह बात उदाहरणों से समझी जा सकती है। कल्पना करो—एक घड़ी है और दूसरी मेज है तो ये दोनों चीजें विभिन्न श्रेणी की हैं इसलिये इनमें यह प्रश्न ही नहीं उठता कि घड़ी अच्छी है अथवा मेज। हाँ, १० घड़ियों में यह पूछा जा सकता है कि इनमें कौन-सी सर्वश्रेष्ठ है, और १० मेजों में भी यह प्रश्न हो सकता है कि सबसे अच्छी मेज कौन-सी है, क्योंकि १० घड़ियाँ अथवा १० मेजें एक श्रेणी की ही वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार चारों वर्ण, प्रकार की दृष्टि से, चार भिन्न प्रकार (श्रेणियों) की चीजें है अतः यह प्रश्न ही नहीं उठता कि ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्रिय या क्षत्रिय बड़ा है या वैश्य आदि। हाँ, अवश्य दस ब्राह्मणों, दस क्षत्रियों इत्यादि में यह पूछा जा सकता है कि उन दसों में कौन ब्राह्मण अथवा दूसरे दस क्षत्रियों में कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ है। क्योंकि १० ब्राह्मण या दस क्षत्रिय पृथक्-पृथक् एक ही श्रेणी की वस्तुयें हैं।

वर्तमान भेद का कारण

यहाँ स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न उठ सकता है कि फिर वर्तमान काल में वर्णों के भीतर छुटाई-बड़ाई का भेद कैसे कहा जाया करता है। इसका उत्तर यह है कि वेद के बाद जो ग्रन्थ स्मृति और गृह्य सूत्रादि लिखे गये हैं उनके द्वारा वर्णों के भीतर छुटाई-बड़ाई का भेद समाविष्ट हुआ और उसका कारण वेद की शिक्षाओं का तिरोहित होना ही कहा जा सकता हैं। वर्तमान मनुस्मृति आदि स्मृतियों और आश्वलायन आदि गृह्य सूत्रों में अनेक बातें, ऐसी हैं जिनका समर्थन वेद द्वारा नहीं हो सकता। यहाँ उनके उदाहरण देने की जरूरत नहीं है। उन्हीं अवैदिक बातों में से एक बात यह भी है कि

क्रमशः एक वर्ण दूसरे से बड़ा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी जहाँ-कहीं वर्णों के भीतर छुटाई-बड़ाई का भाव प्रदर्शित होता है वह इन्हीं ग्रन्थों के मतानुकूल वर्णित हुआ है। वेद में जो शरीर की उपमा से वर्णों का वर्णन हुआ है और जिसमें ब्राह्मण को शिर-स्थानी, क्षत्रिय को बाहु और वक्ष-स्थानी वैश्य और शूद्र को उदर तथा पाद स्थानी कहा गया है। उनमें छुटाई-बड़ाई का कोई भाव नहीं है। क्योंकि शरीर के इन प्रत्येक अवयवों शिर और बाहु आदि में श्रेणी का भेद है। प्रत्येक वर्ण अपने कार्यक्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ और अन्य उसकी अपेक्षा से गौण हुआ करते हैं जैसा कि कहा जा चुका है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने स्थान में उत्तम और उसकी अपेक्षा अन्य वर्ग वहाँ गौण हुआ करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण में सद्भाव और मेल का रहना, वेद की शिक्षा के अनुकूल है।

वैदिक साम्यवाद की विशेषता

इस (वैदिक) साम्यवाद की विशेषता यह है कि इसमें समता का विधान उन्नति का अवसर प्राप्त करने में किया गया है फल प्राप्ति में नहीं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। फल तो प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के अनुकूल ही प्राप्त किया करता है। परन्तु उन्नति का अवसर सबको एक जैसा प्राप्त होना चाहिये। प्रत्येक वर्ग में उत्पन्न हुए बालक गुरुकुलों में चले जाया करते थे और वहाँ प्रत्येक को शिक्षा-प्राप्ति का एक-जैसा अवसर प्राप्त होता था और उस अवसर से लाभ उठाकर कोई भी शूद्र वर्ण में उत्पन्न हुआ बालक अपने को ब्राह्मण वर्ण के कर्त्तव्यों के पालन करने के योग्य बना सकता था और बना लेने पर आचार्य उसका ब्राह्मण वर्ण ही निश्चित कर दिया करता था। इसी प्रकार ब्राह्मणादि वर्णों में उत्पन्न हुए बालक अन्य वर्ण के योग्य अपने गुण कर्मानुसार बन जाया करते थे। इस प्रकार उन्नति का द्वार प्रत्येक के लिए खुला होता था। उन्नति या अवनति करना उसके अपने अधिकार में हुआ करता था। अस्तु अब हम आधुनिक साम्यवाद का संक्षिप्त विवरण देते हैं जिससे प्रत्येक को दोनों का मिलान करने का अवसर मिल सके।

पश्चिमी साम्यवाद

पश्चिमी साम्यवाद का जन्म किस प्रकार हुआ इस बात पर नीचे की पंक्तियों से प्रकाश पड़ेगा—

रोमन साम्राज्य और उस समय के
स्वामी और दास

रोमन राज्य में उस समय की प्रजा दो भागों में विभक्त थी एक कुलीन और धनी (Patrieian) और दूसरे साधारण निर्धन (Plebtions) कहे जाते थे। यही दो विभाग पहले विभाग के अधिक धनी और दूसरे से अधिक निर्धन हो जाने से, स्वामी और दास कहलाने लगे। धनियों ने अपने धन की मदान्धता से उन निर्धन दासों पर अत्याचार करने शुरु किये। उनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) वे दास मनोरंजनार्थ शेरों से लड़ाये जाते थे और जब शेर उन्हें मार डाला करते थे तो वे (अमीर) बहुत खुश होते थे।

(२) 'शारलुअर' एक धनी व्यक्ति ने छत का काम करते हुए मजदूर को गोली से मार कर गिरा दिया। जब वह गोली खाकर गिर रहा था तो उसे इस प्रकार गिरता हुआ देखकर शारलुअर प्रसन्न हो रहा था।

(३) शिकार से लौटकर धनी लोग दासों को मारकर उनके खून से पांव धोया करते थे।

(४) गरीबों के मुहल्लों में आग लगाकर तमाशा देखा करते थे, आदि। निर्धनों ने इन अत्याचारों से बचने के लिये एक प्रकार के भातृ संघ (Brotherhood) जगह-जगह एकान्त प्रदेशों में स्थापित किये। जिनमें वह लोग मिलकर रहते, एक साथ भोजन करते, एक ही प्रकार का वस्त्र पहनते और अपनी-अपनी मजदूरी को एक ही जगह जमा करते थे।

भ्रातृ संघों की स्थापना और उनमें परिवर्तन

इस प्रकार के संघ एलेक्जेनडरिया, जिरोशलीम आदि स्थानों में खोले गए इन का मुखिया जो समस्त संघों का नियमन और नियन्त्रण किया करता था 'इसीर' (Eseer) कहलाया करता था और उसके साथ रहने वालों में जो नवीन लोग दाखिल हुआ करते थे, वे नवशिष्य (Novice) कहलाते थे।

जैलिस क्राइस्ट भी इन्हीं संघों में से जेरोशलीम वाले संघ का सदस्य था इन संघों में अहिंसा प्रतिष्ठित थी, इसलिए इन संघों का अत्याचारी अमीरों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। कार्य और प्रतिकार्य (Action and Reaction) स्वाभाविक रीति से हुआ करते हैं। इसलिए अमीरों के इन अत्याचारों का

बदला लेने के लिए निर्धनों ने हिंसा का आश्रय लिया और ये संघ क्रमशः क्राँतिकारियों और अनारकिस्टों के रूप में परिवर्तित होने लगे। इन परिवर्तनों का मुख्य कारण रूसो का प्रसिद्ध ग्रन्थ (Leeontral Social) हुआ, जिससे वर्तमान साम्यवाद का प्रचलित रूप में जन्म हुआ। मुख्यतया रूसों के तीन सिद्धाँत थे—

रूसो के सिद्धान्त और उनका प्रभाव

(१) भूमि और सम्पत्ति पर सब का बराबर अधिकार होना चाहिये।

(२) बलवानों ने निर्बलों का धन छीनकर उसके स्थायी बनाने का विधान किया है उसी का नाम आईन है।

(३) जिसने भूमि के किसी अंश को अपना होने की घोषणा की वह ठग था।

विद्वानों का मत है कि फ्राँस देश की क्रांति का कारण, रूसो का ग्रन्थ ही हुआ। फ्राँस का राजा लुई (सोलहवाँ) गद्दी से उतारा गया और प्राणदंडित हुआ। वालटेयर ने इस ग्रन्थ को बदमाशों का दर्शन कहा था। रूसो के सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप होने के लिये राबर्ट ओविन (Robert-Owen) आदि ने १७७१ ई० से १८५८ तक में अनेक समुदाय सम्मिलित परिवार (Common family) के ढंग के बनाये, परन्तु कोई भी परिवार औसतन तीन वर्ष से अधिक नहीं चला।

जोजफ प्राउडहन के विचार

१८०९ में एक व्यक्ति प्राउडहन फ्राँस देश में हुआ। वह संपत्ति को चोरी का माल समझा करता था। उसका यह भी विचार था कि न केवल सबके पास संपत्ति समान होगी, बल्कि समय आयेगा, जब सभी लोग बुद्धि, योग्यता और गुण आदि में भी समान हो जायेंगे। इस प्रकार समय-समय पर, अनेक व्यक्तियों ने, इस साम्यवाद की पुष्टि की और उसके रूप के सुधारने का यत्न किया।

कार्ल मार्क्स

उन व्यक्तियों में जर्मनी के विद्वान् कार्ल मार्क्स का सबसे ऊंचा स्थान है। उसने रूसो के सिद्धान्त की कायापलट कर दी और तत्कालीन साम्यवाद को[1] वर्तमान साम्यवाद के रूप ग्रहण करने योग्य बना दिया। अब अधिकांश साम्यवादी रूसो के नहीं, अपितु इसी महापुरुष के अनुयायी हैं।

---

(१) देखो Cruciftion by an eyewitness.

वर्तमान साम्यवाद

वर्तमान साम्यवाद के दो रूप हैं :—(१) सोशलिज्म (२) कम्यूनिज्म इन दोनों बादों के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(१) साम्यवाद (Socialism) चाहता है कि जिन साधनों से पैदावार हुआ करती है उसका स्वत्वाधिकारी समाज को होना चाहिये। (Ownership of the means of proveuraid by social)

(२) वर्गवाद(Comnuinism) का सिद्धान्त है कि निज की जो सम्पत्ति कही जाती है, उसे नष्ट कर देना चाहिये। (Avolution of ace forivato properg)

वर्गवादियों का विचार है कि न किसी की निज सम्पत्ति हो और न आय का विभाग, किसी की सेवा के उपलक्ष्य में हो, बल्कि आवश्यकता के अनुकूल प्रत्येक को धन दिया जावे तो इससे अमीरी-गरीबी के भेद और श्रेणी के अन्तर्गत छुटाई-बड़ाई के विचार सब जाते रहेंगे और संसार के सभी स्त्री-पुरुष एक स्तर के हो जायेंगे।

सोवियत रूस और वर्गवाद

रूस की क्रान्ति का फल यह हुआ कि जार का एकतन्त्री राज्य समाप्त हुआ और उसका स्थान वर्तमान सोविय्त राज्य ने लिया और यत्न किया कि वर्गवाद के सिद्धान्तों को कार्य में परिणत किया जावे। उसने प्रथम पूँजी और भूमि के सम्बन्ध में चाहा कि उन पर वर्गवाद के सिद्धान्त लागू हों।

भूमि के सम्बन्ध में वर्गवाद का परीक्षण

रूस के विधाता लेनिन ने नियम बनाया कि कृषक लोग उपार्जित अन्न में से अपनी आवश्यकतानुसार अपने पास रखकर बाकी अन्न सरकारी भंडार में दाखिल कर देवें। एक वर्ष आंशिक रीति से इस नियम का पालन हुआ। अगले वर्ष कृषकों ने अपनी आवश्यकतानुसार ही भूमि को जोता बोया, बाकी भूमि को खाली पड़ा रहने दिया, राज्य के भंडार में कुछ दाखिल न हुआ तो लेनिन को अपने नियम में परिवर्तन करना पड़ा। अब परिवर्तित नियमानुसार विधान किया गया कि जो कृषक चाहें अपने खेत सोवियत को दे देवें और स्वयं राज्य की मजदूरी करें, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य

रेगा। इस नियम के अनुसार कुछ कृषक अपनी भूमि, रूस की सरकार के हवाले करके स्वयं रूस के सम्मिलित परिवार में शामिल हो गये; बाकी अधिकांश कृषकों ने इसे स्वीकार नहीं किया और स्वयं अपनी-अपनी भूमियों के मालिक बने रहना चाहा। रूस की बोलशेविक सरकार को इसे स्वीकार करना पड़ा। अब रूस के कृषि करने वाले व्यक्ति ८ भागों में विभक्त हैं :—

(१) गरीब कृषि का पेशा करने वाले, बिना भूमि वाले, जिन्हें वहां वैटराफी (Batraki) कहते हैं।

(२) छोटे कृषक थोड़ी भूमि के मालिक, जिन्हें वैडन जैकी (Badnjaki) कहते हैं इनके पास साधन न होने से इन्हें अपनी भूमि सम्पन्न किसानों को लगान पर देनी पड़ती है।

(३) औसत दर्जे के कृषक, जिन्हें सिरडे जैकी (Seroed jaki) कहते हैं जो अपनी भूमि को स्वयं जोतते बोते हैं।

(४) सम्पन्न कृषक जो बहुत भूमि के मालिक हैं और जिन्हें कुलाकी (Kulaki) कहते हैं और जो मजदूरों से मजदूरी देकर खेती कराते हैं और स्वयं अमीरों की तरह से रहते हैं।[1] इस प्रकार भूमि के सम्बन्ध में वर्गवाद का परीक्षण सफल नहीं हुआ। जिन लोगों ने अपनी-अपनी भूमि सरकार को दे दी है, क्या वे इससे सन्तुष्ट हैं ? इस पर भी विचार करना चाहिये। सन् १९३० ई० में डॉक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर रूस गये थे, उन्होंने सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से उनसे प्रश्न किया कि क्या वे अपनी भूमि सरकार को दे देने से संतुष्ट हैं तो उन्होंने असंतोष प्रकट किया था। वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार थे :—

TAGORE

I should like to know the opinion some of the individual Peasents who are here conceining the Principle of private property and whether they request their surrender of their individual from holdings.

ANSWER

A number of them confessered that they entertained orth odox views on this subject, as the subject was not clear to their minds still more of them were shyand embarrassed.%

अतः स्पष्ट है कि भूमि के सम्बन्ध में जो परीक्षण सोवियत रूस ने किये थे वे सब प्रकार से फेल हुए।

---

1. देखो Hindustan Times (Congress number 1922.)

% Modern review of january 1931.)

पूँजी के सम्बन्ध में वर्गवाद के परीक्षण

ये परीक्षण भी सफल नहीं हुए। इसके सम्बन्ध में दो बातों पर विचार करने से विषय पर अच्छा खासा प्रकाश पड़ेगा—

(१) वर्गवाद चाहता है कि निज की सम्पत्ति किसी के पास न रहे परन्तु कहा जा चुका है कि कृषकों के सम्बन्ध में सम्पत्ति न रखने के नियम को सोवियत रूस को शिथिल कर देना पड़ा। इसलिए जहां तक रूस के कृषक-संसार का सम्बन्ध है, पूँजी सम्बन्धी परीक्षण भी सब फेल हुए। उनसे उनकी निजी सम्पत्ति पृथक् नहीं की जा सकी।

(२) मजदूरों के काम की मजदूरी अब तक नहीं थी उन्हें भोजनादि के लिए कार्ड मिल जाते थे जिसके द्वारा वह नियत होटलों में जाकर भोजन कर लेते थे, उन्हें मकान भी रहने के लिए सोवियत की ओर से दिया जाता था, उनके बच्चों के पालन पोषण और शिक्षा का भार भी राज्य ही के जिम्मे होता था, परन्तु इतना होने पर भी मजदूर काम बहुत थोड़ा करते थे अधिक समय उनका वर्गवाद के नारों (Slogans) के लगाने में खर्च होता था परन्तु जब पंचवर्षीय स्कीम की शुरुआत हुई तो मजदूरों पर सख्ती हुई कि 'काम करो या भूखे रहो' इसका स्वाभाविक फल यह होना था कि उनमें असन्तोष हुआ। इस संघर्षण का फल यह हुआ कि भोजनादि देने की उपर्युक्त प्रणाली एकदम बन्द करके पुराने और दुनिया भर में प्रचलित तरीकों पर रूस को लौटना पड़ा और नियम हो गया कि काम करो और मजदूरी लो। इसके सिवा एक का दूसरे के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। वी०-एम० मौलोटोप चेयरमैन ने अपनी वक्तृता में जो सोवियत राज्य की मुख्य प्रबन्धक सभा की दूसरी बैठक में दी थी, इस परिवर्तन का विस्तार के साथ वर्णन किया था।* इस प्रकार जब मजदूर काम करके धन प्राप्त किया करेंगे तो वे अपनी पूँजी भी कुछ न कुछ बचा ही सकेंगे। अतः स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में भी पूँजी सम्बन्धी परीक्षण फेल हुए।

---

* Vide report of the speech by V- M, Molotov chair man of the council of people's commissars, to the second session of the central executive Committee of the U. S. S. R. on the new policy indicating ioners to return to a monetary system on the lines in use in other civilised countries and the development of the wage system, published in the monthly "Review by the U. *S.* S. R. trade velegation in Great Britan.

(Hindustan Times 23. 2. 1936)

परिणाम

निष्कर्ष यह है कि सोवियत रूस ने जिन दो बातों (भूमि और पूँजी) के सम्बन्ध में वर्गवाद (Communism) के परीक्षण किये थे वे दोनों फेल हुए। इसलिए भविष्य में उन लोगों को, जो साम्यवाद के द्वारा बड़ी-बड़ी आशाओं की पूर्तियों के स्वप्न देखा करते थे, इन असफलताओं से सबक लेना चाहिये और ऐसी बातों की ओर, जो केवल वाद (Theory) ही वाद हैं कभी क्रियात्मक रूप ग्रहण नहीं कर सकते, भविष्य में ध्यान देकर अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

क्या साम्यवाद के अपनाने से रूस कुछ बेहतर हो गया ?

अन्त में हम एक दृष्टि इस बात पर भी डाल लेना चाहते हैं कि अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा साम्यवाद का आश्रय लेने से क्या रूस कुछ अधिक उन्नत अवस्था में आ गया ? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए रूस में घटित घटनाओं और उसकी प्रचलित अवस्था पर विचार करना चाहिये। उनमें से कुछेक का हम यहाँ उल्लेख करते हैं :—

(१) साम्यवादियों का रूस की सरकार ने अपनी असहिष्णुता से, जो किसी भी राज्य के लिए, अधिक से अधिक लज्जा की बात हो सकती है, अपने सिद्धान्तों के न मानने के कारण १६३३ तक, निम्न संख्या में स्त्री-पुरुषों का वध करा डाला—३१ लार्ड विशप, १५६० पादरी, २४५८५ वकील और मजिस्ट्रेट, ७६६७६ जज और अन्य कानूनी अफसर १६३६७ अध्यापक और विद्यार्थी, ६५८६० अमीर और रईस, ५६३४० सिविल और मिलिट्री आफीसर, २ लाख मजदूर, ३ लाख राजनैतिक कार्यकर्त्ता और ६ लाख किसान। अनेक स्त्री-पुरुष देश से बहिष्कृत करके साइबेरिया भेज दिये गये। २॥ लाख आदमी रूस छोड़कर बाहर चले गये। ५००० गिरजाघर गिराये गये या सिनेमा आदि के काम में लाये गये।[1]

(२) सोवियत रूस की ओर से एक बोर्ड है जिसे वहाँ ग्लैविलिट (Glavlit) कहते हैं[2] इसकी स्वीकृति के बिना वहाँ कोई पुस्तक नहीं छप सकती। दैनिक या मासिकादि पत्रों को कोई उसी अवस्था में निकाल सकता है यदि राज्य की नीति के समर्थन करने की प्रतिज्ञा करे। बाहर से इस बोर्ड की

---

(१) देखो Reformer Lahore dated १०. ३. १६३४

(२) Supreme Board of sensordship.

स्वीकारी के बिना कोई पुस्तक रूस में नहीं छप सकती। कोई धार्मिक ग्रन्थ रूस में नहीं छप सकता।[3]

(३) ५ दिसम्बर १९३४ को सोवियत रूस ने अपनी सरकार के ६६ अफसरों को, मतभेद होने पर, फांसी पर एक साथ लटका दिया।[1]

(४) एक अमेरिकन विद्वान् जो अमेरिका का पत्रकार (Journalist) था और जिसका नाम जानरीड था और जा अपने वतन को छोड़कर लेनिन का साथी बन गया था वह १९१९ ई० में मर गया। वह रूस में देवताओं की तरह माना जाता था।

मरने पर उसे मास्को में लेनिन के बराबर ही दफन किया गया। उसके मरने पर समस्त सरकारी दफ्तर बन्द हो गये थे और १० हजार से अधिक आदमी उसके जनाजे के साथ गये थे। उसके जीवन कालीन मित्र एक रूसी व्यापारी जे० एच० रुबिन (Jacob H. Rubin) ने, जो अमेरिका में व्यापार करता है, उस (जानरीड) के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित की है।[2] उस पुस्तक से कुछेक उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं पुस्तक में रोबिन ने जानरीड के लिए लिखा है कि उसने आँसू बहाते हुए उससे कहा—

"रोबिन ! मुझे (वर्गवादी बनने से) क्या लाभ हुआ ! मैंने अपने मित्रों को (वर्गवादी बनने के लिए) छोड़ा, परिवार को छोड़ा, परन्तु इससे क्या लाभ हुआ? क्या सोवियत रूस के आदमी अमेरिका निवासियों से अच्छे हैं ? कदापि नहीं ! क्या वर्गवाद ने किसी बात में भी सफलता प्राप्त कर ली ? कदापि नहीं।

'मैं जन्म भर साम्यवादी रहा परन्तु मुझे निश्चय हो गया कि दुनिया हजारों वर्ष तक इस(वर्गवाद) के ग्रहण करने के योग्य न होगी।"

"अपने वर्गवादी नेताओं को देखो जब वे समर्थ होते हैं तब क्या करते हैं। लेनिन, ट्राटस्की और ऐसे ही कुछेक को छोडकर बाकी सभी छली राजनीतिज्ञ, ख्याली पुलाव पकाने वाले और निरे मूर्ख हैं।"

"यह बात (रूस में) प्रत्येक जानता है कि 'चेका' के मुखियागण रिश्वत लेते हैं, चोरी करते हैं और यहां तक कि लोगों को, उनका धन लेने के लिए मार तक डालते हैं।"

---

(३) देखो Leader Dated ११. १. १९३०

(१) Modern review Janvary १९३५ p १३३

2. Moscow Misage by J. H. Robin qoated in the daily Hindustan Times Dated 7. 6. 1935.

"सरकारी उच्च पदों पर और कारखानों में कौन आदमी नियत होते है ? वर्गवादी गण, योग्यता रहित राजनीतिज्ञ, ख्याली पुलाव पकाने वाले जो अपना समय चाय पीने, व्याख्यान देने और पार्टीबन्दी करने में लगाया करते हैं।" "अमेरिका में पूंजीवाद को मैं घृणा करता था परन्तु मुझे वहां स्वतन्त्रता थी कि जिस गली कूंचे में चाहूँ अपना मत प्रकट करूँ। परन्तु यहा (रूस में) जो चाहते हैं कि दुनिया भर को स्वतन्त्र कर दें, मैं बोलशेविक सरकार की आलोचना नहीं कर सकता, या एक शब्द भी सहानुभूति का पूंजीपतियों या अल्प पक्ष वालों के लिए जुबान से नहीं निकाल सकता ●

असली अंग्रेजी के इस प्रकार हैं :—

● "What I have gained Rodin! Sacrified my friends, my family, myself and for what ? Are the people have any better off then in the Uni.ed States ? no ! Has communism accomplished any thing ? no ! I have been a socialist all my life, I am still in theory. But I can see now that the world that is human beings—will not be reads for socialism for thousands of year.

Look at your communist Leaders & what they do when they are in power! Except for Lenin & Troteskey and a few others they are grafters, politicions, the orist or hopeless fools.

Every body knows that the heads of Cheka are accepting bsibes, stealing, even killing people to get their wealth, who hold the important position in the Govt. and in the factories ? members of the comnunist party, political job holdex, without any qualifications, dreemers who spend their times drinking tea and making speaches are working for the party.

In the United States I hated the caiptal istic system, but I was at liberty to get up on a street corner and express myself. Here where, They are trying to free the whole world, I can criticise the Govt. or say a wold of sympathy not for the capitalist not for men Shavik party of the communist"

"वह (जानरीड) जिससे विदेशी वर्गवादी बड़ा प्रेम करते थे, भयभीत रहता था कि कोई शब्द उसके मुँह से बोलशेविक सरकार या उसके कर्मचारियों के विरुद्ध न निकल जाय, यहां तक कि अपने मेहमानों से भी इस विचार से कि उनमें कोई सरकार का गुप्तचर न हो।" (John Read the best lover of foreign communist, told Rubin that he was afraid to say any thing about the Govt. or the Officials, even to his guests, fearing that one of them might be spy. (Hindustan Times, Dated (७. ६. १९३५)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रूस में साम्यवाद के सम्बन्ध में जो परीक्षण हुए वे पूर्ण रूप से फेल हुए। अब सोवियत रूस नाम मात्र के लिए भी अपने सिद्धान्तों को नहीं रखना चाहता और एक-एक को छोड़कर उनके स्थान पर, उन्हीं पूँजीपतियों के राज्यों में प्रचलित विषयों को बराबर अपना रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि साम्यवाद और वर्गवाद दोनों वाद अक्रियात्मक हैं। न कोई समाज समस्त उन साधनों का मालिक बन सकता है जिनसे पैदावार हुआ करती है और ही निज सम्पत्ति नष्ट की जा सकती है। इसलिए मैं देशवासी, स्त्री-पुरुषों, युवक और युवतियों, सभी से निवेदन करता हूँ कि वे गम्भीरतापूर्वक इस विषय पर विचार करें। यदि उन्होंने ऐसा किया तो यह निश्चय है कि उन्हें प्रसन्नता और अप्रसन्नता किसी प्रकार से क्यों न हों उसी साम्यवाद की तरफ झुकना पड़ेगा जिसका उल्लेख प्रारम्भ के पृष्ठों में किया गया हैं और जिसे वैदिक साम्यवाद कहते हैं और जिसका क्रियात्मक रूप आश्रम और वर्ण-व्यवस्था है।

वैदिक विचारधारा के प्रसार से ही संसार में स्वर्ग आ सकता है।

अराष्ट्रीय ईसाई तत्वों के विरुद्ध
११ पुस्तकें तैयार हैं

इन्हें मंगाइए : बांटिए और देश को बचाइए

१. ईसाई पादरी उत्तर दें।	—स्वामी श्रद्धानन्द	३) सैकड़ा
२. A challange to the christian Faith	,,	३) सैकड़ा
३. Bible in the Balance	—चार्ल्स स्मिथ	१५) सैकड़ा
४. ज्ञान विज्ञान के शत्रु ईसाई मत	—ओमप्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा
५. पोप की सेना का भारत पर हमला	—भारतेन्द्रनाथ	१०) सैकड़ा
६. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली	—जगत् कुमार	१०) सैकड़ा
७. पादरियों को चुनौती	—स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१०) सैकड़ा
८. बाइबल को चुनौती	—ओम्प्रकाश त्यागी	१५) सैकड़ा
९. और पादरी भाग गया	—ओम्प्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा
१०. ईसाइयत की वास्तविकता	—शांति प्रकाश महोपदेशक	१०) सैकड़ा
११. बाइबल कसौटी पर………	चार्ल्स स्मिथ	१५) सैकड़ा

अधिक से अधिक मगांकर बांटें।

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

उदारता पूर्वक सहयोग दें

कुछ क्षेत्रों में ईसाई विरोधी साहित्य तो चाहिए पर वे धन नहीं भेज सकते, अतः वहां साहित्य भेजने के लिए सहयोग चाहिए। आप अपनी ओर से ईसाई प्रभावित क्षेत्रों में वितरण के लिए अधिक से अधिक साहित्य भिजवायें। यह राष्ट्र की महत्वपूर्ण सेवा होगी। इसके लिए जितनी सहायता हमें प्राप्त होगी उतना ही साहित्य हम भेजते जायेंगे उदारता पूर्वक सहयोग दीजिए।

राकेश रानी
—सम्पादक

गोहाटी के प्रसिद्ध आर्य श्री वेदप्रकाश शर्मा की पुत्री आयुष्मती वर्षा का शुभ विवाह दिल्ली में आचार्य विद्याभास्कर शास्त्री द्वारा संपन्न हुआ। १०१) रु० वेद प्रचार यज्ञ में 'जन-ज्ञान' को दान दिया। हार्दिक बधाई।

—संपादक





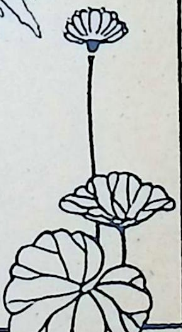
ब्र० सत्यानन्द ने गत गोरक्षा आंदोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। आजकल वे विद्याध्ययन में लगे हैं पर उन का संकल्प है कि यदि आर्य समाज आन्दोलन में कूदा तो वे सब सब से आगे रहेंगे।

जन-ज्ञान मासिक नई दिल्ली ५

जुलायी १९७० (Regd. No D. 1631)



चारों वेदों के चुने हुए १००-१००
ईश्वर भक्ति के मंत्रों का संग्रह
अर्थ और भावार्थ सहित



जन ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली

श्रावणी संवत २०२७

(अधिक से अधिक मंगाएं । मूल्य १)